Chapter-9

नवम्-अध्याय

कला-सौष्ठव

मनुष्य स्वभावत: सौन्दर्य-प्रिय प्राणी है । वह निजी सौन्दर्यानुभवों की अभिव्यक्ति करने के लिए कला की जिन विविध विधाओं का माध्यम ग्रहण करता आया है उनमें काव्य-कला ही श्रेष्ठ है क्योंकि यह अपेक्षाकृत अधिक जीवंत और मार्मिक होती है । वह पाठक व श्रोता को सीधे स्पर्श करती हुई उसकी अतल गहराइयों में एक भावांदोलन उत्पन्न कर देती है । जिस कवि के काव्य में यह क्षमता जितनी अधिक प्रखर होती है, उसकी काव्य-कला उतनी ही उत्कृष्ट होती है ।सामान्यत: काव्य के बहिरंग पक्ष से संबंधित अभिव्यक्ति शिल्प को काव्य- कला के नाम से अभिहित किया जाता है । इसे रचना-कौशल भी कह सकते हैं ।

काव्य के अंतरंग एवं बहिरंग या अनुभूति एवं अभिव्यक्ति पक्ष की महत्ता पर विचार करते हुए अद्यावधि भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषियों ने अनेकविध युक्तिसंगत तर्क-वितर्कों को हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है । ऐसा करते हुए शास्त्रकारों एवं समालोचकों ने कभी एक पक्ष को प्राधान्य दिया तो कभी द्वितीय को । वस्तुत: काव्य की आत्मा के सन्दर्भ में चिन्तनपूर्ण अपने अभिमतों को व्यक्त करते हुए उन्होंने पक्ष विशेष की महत्ता को प्रतिपादित करने का यत्न किया है । पाश्चात्य मनीषियों के विचारानुसार काव्य, कला का एक अंग है । अर्थात् कला के अंतर्गत काव्य को समाहित करते हुए उन्होंने कलावादी चिन्तन प्रस्तुत किया है । फलत: पश्चिम के अधिकांश विद्वानों ने काव्य के अभिव्यंजना शिल्प को अधिक महत्व प्रदान करते हुए काव्य के बहिरंग या अभिव्यक्ति पक्ष को प्राधान्य दिया है । प्लेटो एवं अरस्तू से लेकर वर्तमान समय पर्यन्त के समालोचकों के चिन्तन में किसी न किसी रूप में कला विषयक विशिष्ट दृष्टि का परिचय प्राप्त होता है । एक ओर आई.ए. रिचर्ड्स ने काव्य में 'प्रेषणीयता' को अधिक महत्व देते हुए काव्य की सत्यानुभूति को पाठक या कलारसिक के मनोजगत तक संप्रेषित करने की कला को महत्व दिया तो दूसरी ओर क्रोचे ने अभिव्यंजना शिल्प को महत्व दिया । ब्रेडले,क्लाइव बेल,

रोजर, फ्राइ आर्नाल्ड तथा जार्ज इन्सैप आदि समालोचकों की दृष्टि कलावादी ही रहीं। इसका यह अर्थ नहीं कि पश्चिम के विद्वान् मनीषियों ने काव्य के बोधपक्ष या उसके अनुभूति पक्ष पर विचार ही नहीं किया है। काव्य को अंतरंग से सम्बंधित करने की प्रक्रिया जान ड्रिंकवाटर में दिखलाई देती है जिनका कहना है कि काव्य पवित्रीकृत जीवन है।[१] किन्तु अधिकांश मनीषियों ने कलावादी चिन्तन दृष्टि के कारण काव्य के कलापक्ष को अधिक महत्व प्रदान किया है। भारतीय मनीषियों ने कला को काव्य का एक पक्ष माना है। अत: काव्य और उसकी आत्मा के संदर्भ में भारत में अधिक विचार हुआ है। भारतीय साहित्य के आचार्यों ने अपने विशिष्ट चिन्तन के आधार पर रीति, वक्रोक्ति, अनुमिति, औचित्य, ध्वनि या इसको काव्य की आत्मा माना। इनमें ध्वनि एवं रसवादी आचार्य काव्य के अनुभूति पक्ष को प्राधान्य देते हुए दृष्टिगत होते हैं, किन्तु शेष सभी आचार्य प्रकारांतर से काव्य के अभिव्यक्ति पक्ष को ही महत्व प्रदान करते हैं। परवर्ती काव्य में यद्यपि भारतीय भाव-भूमियों एवं दर्शन के कारण रसवादी आचार्यों के चिन्तन को भारतीय काव्य में अधिक स्थान मिला और रस को ही काव्य की आत्मा मानते हुए काव्य के अनुभूति पक्ष को अधिकाधिक महत्व दिया गया तथापि आधुनिक काल में काव्य के कलापक्ष या उसके रचना कौशल पर भी पर्याप्त चिन्तन हुआ है। जहाँ तक कला पक्ष का सम्बंध है, पौर्वात्य एवं पाश्चिमात्य मनीषियों ने बहुधा कलापक्ष को भावपक्ष से स्वतंत्र एवं अधिक श्रमसाध्य समझा है। वस्तुत: दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। कलापक्ष काव्य को उत्कर्षमय बनाता है तो भावपक्ष, कलापक्ष को सार्थकता प्रदान करता है। भावपक्ष की अनुपस्थिति में कलापक्ष एक बौद्धिक व्यायाममात्र होगा और कलापक्ष की अनुपस्थिति में भावपक्ष को स्थायीत्व प्राप्त नहीं होगा। जिस तरह शरीर और प्राण का अविच्छिन्न एवं अन्योन्याश्रित सम्बंध माना गया है, ठीक उसी तरह काव्य के भावपक्ष और कलापक्ष का सम्बंध समझा जाना चाहिए।

कवि की सत्यानुभूति कल्पना के इन्द्रधनुषी रंगों में सज्ज होकर सहज और

सरस अभिव्यक्ति के लिए व्याकुल होती है। चेतनामयी भावभूमि में रहकर कवि निजी सत्यानुभूति को जितनी साहजिकता के साथ अभिव्यक्त कर सकता है, उतनी ही उत्कृष्ट कोटि की कविता का सर्जन होता है। अभिव्यक्ति ही कला है। अभिव्यक्त होते-होते कवि के अमूर्त भाव मूर्तता प्राप्त करते हैं। मूर्तता की प्रक्रिया ही कला है, रचना कौशल है। भाषा, शब्द-शक्ति अलंकार, छन्द योजना आदि साधनों की सहायता लेकर कवि की भावसृष्टि का सर्जन होता रहता है। जनवादी चिन्तन करनेवाले कवि के लिए केवल मनोरंजन ही काव्य का उद्देश्य न होकर जन-जीवन को सुसंस्कृत बनाने की लोकोत्तर एषणा भी काव्य-रचना में सन्निहित होती है। अथक साधना व जीवनगत संस्कारों एवं आदर्शों के विशेष दृष्टिकोण से युगीन परिवेश के अनुरूप वह सत्यान्वेषण करता हुआ लोकमंगलयुक्त काव्य- सर्जन की प्रक्रिया में साहजिक रूप से संलग्न होता है। ऐसे महद् उद्देश्य से संप्रेषित कवि के काव्य की मानव-जीवन पर जितनी व्यापक और गहरी प्रभावान्विति दृष्टिगत होती है, उतनी संभवत: शस्त्रास्त्रों के व्याघात की भी नहीं। तभी तो एक साधक कवि के काव्य की एक पंक्ति भी इप्सित परिणाम को प्राप्त करती हुई कभी विध्वंस करवा सकती है तो कभी मृतप्राय एवं अकर्मण्य व्यक्तियों में न नूतन प्राणों का संचार करती है। काव्य में सर्जन एवं विसर्जन की द्विविध शक्तियाँ निहित हैं। वह युगीन आवश्यकताओं के अनुरूप कभी अनुरागमय अमृत का रसपान कराता हुआ चित्तवृत्तियों को उर्ध्वमुखी करके व्यक्ति को मानव बनना सिखाता है तो कभी अन्याय परपीड़न, शोषण इत्यादि समाज व राष्ट्रगत दोषों का उन्मूलन करने के उद्देश्य से एक आमूल क्रांति भी उत्पन्न कर सकता है। मानव-जीवन के संपूर्ण मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति जितनी कुशलता से काव्य कर सकता है, उतनी कोई अन्य कला नहीं। वह मानव जाति के अनुभवों, भावों, कार्यों तथा अन्तर्वृत्तियों का समष्टि रूप है। तदर्थ अभिव्यक्ति की कला में कवि जितना प्रवीण एवं सिद्धहस्त होता है, कवि का काव्य उतना ही प्रभविष्णु बनता है।

हमारे आलोच्य कवि पं० सोहनलाल द्विवेदी उपर्युक्त महद् उद्देश्य से संप्रेरित

होकर ही कलम काव्य-रचना के लिए प्रवृत्त होते दिखाई पड़ते हैं। पशुसुलभ वृत्तियों से मानव-जीवन को ऊपर उठाकर संस्कृतिजन्य आदर्शों से परिपूरित आत्मोत्कर्ष के लिए वे काव्य सर्जन करते हैं। मानव जाति का कल्याण एवं अभ्युदय उनके काव्य का मूल स्वर है। उनका विशुद्ध मानव प्रेम ही उन्हें निश्छल देशभक्तिमूलक राष्ट्रीय काव्य-सर्जन की प्रेरणा देता रहता है। जननी जन्मभूमि उनकी इष्टदेवी है और उसकी एकान्त सेवा ही उनका जीवन लक्ष्य है। काव्य-सर्जन की मूल प्रेरणा की ओर संकेत करते हुए वे कहते हैं, 'मेरी इष्टदेवी एकमात्र राम, कृष्ण, तिलक, गोखले, गांधी जी की जननी भारतमाता है। मैं शत-शत जन्म धारण करके भी अपनी इष्टदेवी के ऋण से मुक्त नहीं हो सकता। मेरी लेखनी भारतमाता के वर्तमान और भविष्य की ही आराधिका है। मेरा जीवन और मेरी कलम भारतमाता की सेवा में ही एकान्त समर्पित है।'[2] उनकी लेखनी जैसा कि उक्त उद्धरण में उन्होंने स्वीकार भी किया है, भारतमाता के वर्तमानकालीन संघर्षयुक्त परिस्थितियों में भारतीय चेतना को उजागर करनेवाली और साथ ही भारत के भावी निर्माणमूलक अभ्युदय की आराधिका रही है। द्विवेदी जी की काव्य-यात्रा में छायावाद, प्रगति-वाद, प्रयोगवाद, नयी कविता आदि विभिन्न वादों ने आधुनिक हिन्दी काव्य के विकास में कतिपय मानदंडों को प्रस्तुत किया जिनका युगगत मूल्य अवश्य रहा किन्तु युग परिवर्तन के साथ-साथ उनका मूल्य भी परिवर्तित होता रहा। द्विवेदी जी का कवि किसी वाद के सीमित आयामों में आबद्ध होकर काव्य-सर्जना नहीं करता। राष्ट्र-धर्म को ही निजी धर्म समझकर राष्ट्रीय नवोन्मेष की प्रक्रिया को ही अनुप्राणित करने का निरंतर प्रयत्न करता रहा है। एक ओर वह राष्ट्रीय आंदोलन कालीन स्वातंत्र्य-प्राप्ति के तात्कालिक लक्ष्य की पूर्ति के लिए काव्य-साधना करता रहा तो दूसरी ओर स्वातंत्र्यपूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तरकालीन राष्ट्रीय निर्माण के पुनीत कर्तव्य की पूर्ति के लिए काव्य-सर्जना करता रहा है। काव्य-सर्जना के उद्देश्य का संकस्त संकेत करते हुए वे कविता रानी से संबोधन करते हैं -

'तुम जगद्धात्रि ! जग कल्याणी !
तुम महाशक्ति, सोचो क्या हो ?
कविते ! केवल तुम नहीं अश्रु
जीवन में जय की आत्मा हो ।

तुम कर्मगान गाओ जननी
तुम धर्मगान गाओ धन्ये ।
तुम राष्ट्र-धर्म की दीक्षा दो
तुम करो राष्ट्र रक्षण पुण्ये ।'[3]

अहर्निश राष्ट्र का हितचिंतन करनेवाले द्विवेदी जी यद्यपि गांधी जीवन-दर्शन को जीवन और काव्य में अवतरित करने का सुष्ठु प्रयास करते हैं, तथापि वाद-विरोधी कवि एकमात्र गांधीवाद की सीमाओं में आबद्ध रहना पसंद नहीं करते । वे भारतमाता को ही केन्द्र में रखते हुए स्वयं घोषणा करते हैं, 'गांधीवाद की अपेक्षा निश्चित ही भारतमाता मेरे समक्ष प्रथम है । मैं किसी वाद के घेरे में बंधना नहीं चाहता । यह बात और है कि गांधी जी की रीति-नीति मुझे एकमेव ऐसी लगी जिससे राष्ट्र का कल्याण-अभ्युदय भारतीय पद्धति से सुगम है ।'[4]

कला-विषयक कवि का निजी दृष्टिकोण :

राष्ट्र की स्वाधीनता एवं उसके समुचित अभ्युदय की कामना के हित अपना जीवन समर्पित कर देनेवाले कवि द्विवेदी जी सच्चे अर्थों में भारतीय जन-समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं । वे बहुजनहिताय काव्य-सर्जन करने के पक्षपाती हैं । तदर्थ वे जनता के लिए, जनता की भाषा में जनता के ही भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने का आग्रह रखते हुए कहते हैं, 'शताब्दियों से उपेक्षित, तिरस्कृत एवं बहिष्कृत जनता के लिए हम लिखें और उनकी भाषा में लिखें जिसे वे समझ सकें । आज हमारे राष्ट्र की माँग यही है कि हम जनता के लिए साहित्य-सृजन करें। इस दृष्टि से प्रारंभ

ही से 'बहुजनहिताय' लिखने की मेरी चेष्टा रही है ।'[५] यह सच है कि जनता के पास भावनाएँ होती हैं और विशेष परिस्थितियों में वह एतद् भावनाओं की अनुभूतियाँ भी करती रहती हैं, किन्तु तदनुरूप शब्दावली के अभाव में अपनी आशा - आकांक्षाओं की सम्यक् अभिव्यक्ति नहीं कर पाती । जनता की इस त्रुटि की पूर्ति जनकवि करता रहता है । वह जनता की उन अनुभूतियों को वाणी प्रदान करता हुआ उन्हीं का संरक्षक एवं पोषक बना रहता है । द्विवेदी जी ऐसे ही एक सजग जनकवि हैं जो मनसावाचाकर्मणा जनता की मूक वेदना-व्यथाओं को, आशा-आकांक्षाओं को यथा-समय जन-भाषा में ही अभिव्यक्त करते रहे हैं । काव्य-सर्जन की मूल दृष्टि में युगीन आवश्यकताओं के अनुसार आवश्यक परिवर्तन का साग्रह अनुरोध करते हुए कवि समाज से वे कहते हैं,'आज हमें उस काव्य के चमत्कार की आवश्यकता नहीं, जो पंडितमण्डली का ही अनुरंजन कर सकता है, जिसके सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों का ऊहापोह देखकर प्रतिभा की प्रखरता पर हम प्रशंसा के पुल बांधते आये हैं । काव्य के चमत्कार का युग गया । आज तो हमें अपने उन कोटि-कोटि भाई-बहनों के भावों को संसार के समक्ष रखना है, जिसे वे नहीं रख सकते । कोटि-कोटि मूक पंगु मानवों को हमें वाणी एवं गति प्रदान करनी है ।'[६]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि द्विवेदी जी पंडितमंडली के अनुरंजन के निमित्त चमत्कारपूर्ण काव्य-सर्जन में नहीं मानते हैं । काव्य के कलागत सौन्दर्य की अभिवृद्धि ही उनका लक्ष्य नहीं है अपितु दलित एवं पीड़ित मानव-जन-समुदाय की आहों-कराहों को जनवाणी में ही अभिव्यक्त करना ही उनका लक्ष्य है जिससे राष्ट्र का अभ्युदय हो सके । ऐसा करने में उन्हें कई प्रकार के प्रलोभनों को छोड़ना पड़ा है । वस्तुत: न उन्हें यशोलिप्सा परवश बनाती है और न उन्हें अर्थप्राप्ति के दुर्दम आकर्षण का शिकार होना पड़ा है ।'यश से और अर्थ कृते' जैसे काव्य के क्षुद्र प्रलोभनों से बहुत ऊँचे उठकर उन्होंने विशुद्ध रूप से बहुजनहिताय ही काव्य-सर्जन किया है । तभी तो वे कहते हैं -

मुझे नहीं है लोभ राज्य के वरदानी वरदान का
मुझे नहीं है लोभ राज्य के सम्मानी सम्मान का
मैं जनता का प्रहरी हूँ, मैं कवि हूँ, हिन्दुस्तान का ।[७]

जनवादी एवं कलावादी कवियों के काव्य-सर्जन में दृष्टिगत अंतर होता है । जो कलावादी कवि होता है, वह विद्वद् समाज में अपने ज्ञान की शंखध्वनि करना पसंद करता है । वह विद्वद् भोग्य भाषा में काव्य-कलागत प्राय: सभी बारीकियों, बिंबों, प्रतीकों एवं अलंकारों का प्रचुर मात्रा में उपयोग करता हुआ कलागत पच्चीकारी को अधिक महत्व प्रदान करता है । ऐसे कवियों की अभिव्यक्ति सायास होती है क्योंकि रमणीय शब्दों के प्रतिपादन में ही उनका मानस अधिक प्रवृत्त रहता है । वह काव्य की लक्षणा एवं व्यंजना शब्द-शक्तियों का यथोचित प्रयोग करके क्रमश: चमत्कारिक एवं रमणीय अर्थों की एक नूतन सृष्टि भी कर सकता है । किन्तु जनवादी कवि उक्त कलागत पच्चीकारी की परवाह किये बिना अभिधाप्रधान सरलतम शब्दावली में जनता के भावों को वाणी प्रदान करना अपना कर्तव्य समझता है । उसके विचार में, वह कर्म कविता क्या, जो डंके की चोट पर अपनी बात कहते हुए जन-समाज को निर्विलम्ब आकर्षित कर लोकमंगल के अपने निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बेचैन न बना दे । वह कविता क्या, जिसे सुनते ही युवामानस में विद्युत सम प्रवाह तरंगायित न हो जाय और उसके अंग -अंग में उसकी पूर्ति के हेतु तड़पन का जादुई प्रभाव परिलक्षित न हो । 'कला को कला के लिए' नर्म निर्मित करने का उद्देश्य लेकर काव्य-सर्जना करनेवाले कवि का काव्य कला-सौष्ठव की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट सिद्ध हो सकता है किन्तु वह समाज-जीवन से बहुत दूर हो जाता है । कला का, काव्य-कला का अपना आनंद होता है और पाठक व + श्रोता क्षणस्थायी उस ब्रह्मानंद सहोदर आनंद का अनुभव भी कर सकता है किन्तु इसके बाद क्या ? क्या वह शेष समय में अपने राष्ट्र व समाज, जिसमें वह स्वयं जीवित रहता है, को विस्मृत कर सकता है ? वस्तुत: वह समाज की उपेक्षा नहीं कर सकता । वह काव्यानंद में मस्त रहकर अकर्मण्य भी नहीं बन सकता ।

वह कविता क्या जो मानव-समाज को अकर्मण्य बना दे । कविता तो वही सच्ची मानी जानी चाहिए जो अकर्मण्य व्यक्ति को कर्मण्य बनाकर काव्यानंद के साथ-साथ लोक-कल्याण में प्रवृत्त करे । किन्तु काव्य का यह लक्ष्य तभी परिपूर्ण हो सकता है जब उस काव्य में कवि का अनुभूत एवं जीवित सत्य उसके प्रत्येक शब्द में सन्निहित हो । कवि की प्रत्येक काव्य-पंक्ति या छंद उसी गतिशील सत्य का उद्घाटन करता हो । काव्य-कला केवल मनोरंजन की वस्तु न रहकर तुलसी की कविता-सी सुरसरि की तरह सबका समान रूप से हित करनेवाली हो । कबीर, सूर आदि संत-भक्तों ने काव्यगत सत्य, जिसे उन्होंने आजीवन जीया, का अपने वांगमय द्वारा कलागत पच्चीकारी के व्यामोह में पड़े बिना उद्घाटन किया है । इसका यह अर्थ नहीं कि उनके काव्य में कलागत सौन्दर्य विद्यमान नहीं है । सहज रूप से अपने जीवनानुभूति सत्य के संप्रेषण में कलागत सौन्दर्य भी अभिव्यक्त हो पाया है । वह सत्य के संप्रेषण में ~~कलागत सौन्दर्य भी~~ सहायक सिद्ध हुआ है, केवल चमत्कारपूर्ण अभिव्यंजन के रूप में नहीं। संभवत: यही कारण है कि उनका काव्य इतनी शताब्दियों के पश्चात् आज भी पाठक व श्रोता के मानस को प्रभावित कर सकता है । कहना न होगा कि पं० सोहनलाल द्विवेदी का कवि भी अपने अनुभूत सत्य का उद्घाटन, कलागत पच्चीकारी के व्यामोह में पड़े बिना अपने समस्त वांगमय में अत्यन्त साहजिकता के साथ करता है । ध्येयनिष्ठ संत-भक्त कवि जिस मस्ती एवं तल्लीनता के साथ अपने आराध्य की उपासना में रत रहकर अपने काव्य में अनुभूत सत्य का साहजिक उद्घाटन करते रहते हैं, ठीक द्विवेदी जी का कवि भी उसी मस्ती एवं तल्लीनता के साथ देश-भक्ति एवं राष्ट्र के अभ्युदय कारी ~~के~~ ध्येय निष्ठा में तन्मय होकर निजी अनुभूत सत्य का बड़ी आस्था के साथ साहजिक उद्घाटन करता है । तभी तो लक्षणा एवं व्यंजना शब्द-शक्तियों का व्यामोह छोड़कर प्राय: अभिधा का सहारा लेते हुए कवि स्वयं ~~कि~~ कहते हैं, 'जान बूझकर मैं कल्पना के पंखों पर चढ़कर हिम-श्रृंगों पर नहीं उड़ा, क्योंकि उतनी दूर मेरा पाठक न जा सकता था, काव्य की लक्षणा एवं व्यंजना का मोह भी मुझे छोड़ना पड़ा । अभिधा से ही मैंने अपना काम चलाया ।'[८] जन कवि होने के

नाते जन-समाज को ही केन्द्र में रखकर कवि ने अपने भावों व विचारों को उसके सम्मुख शीघ्र ही सम्प्रेषित करने के उद्देश्य से सीधी, सरल और स्पष्ट शब्दावली युक्त जनभाषा का प्रयोग किया है। "कविता न लिखकर मैंने तुकबन्दी लिखना स्वीकृत की और यदि इससे वे रचनाएँ जनता के हृदय तक पहुँच सकी हैं तो मैंने अपने प्रयत्न को असफल नहीं माना।"[९] इससे स्पष्ट है कि कलागत सौंदर्य एवं पच्चीकारीयुक्त बौद्धिक व्यायाम उनकी काव्य कला का उद्देश्य नहीं रहा। जन-समाज तक निजी सत्यानुभूति को शीघ्रातिशीघ्र साहजिक रूप से संप्रेषित करना ही उनके काव्य का लक्ष्य रहा है। आडंबर रहित सहज अभिव्यक्ति उनके काव्य का प्रमुख लक्षण है। कहीं कोई दुराव-छिपाव या वक्रता दृष्टिगत नहीं होती। कलागत श्रेष्ठता या अभिव्यक्ति की वे बारीकियां उनकी काव्य-कला में प्राय: नहीं पाई जातीं जो कलावादी कवियों की कविता में दृष्टिगत होती हैं। लक्षणा एवं व्यंजना शब्द-शक्तियों के अभाव में उनकी कविता विद्वत्समाज के सम्मुख उतना सम्मान नहीं पा सकती जितनी कलागत पच्चीकारी युक्त कविता। संभवत: यही कारण है कि विद्वन्मनीषियों ने उनकी कविता की प्राय: उपेक्षा-सी की। वैसे द्विवेदी जी का कवि अपने युग के प्रति वफादार है। "जो कवि अपने आप के प्रति सच रहता है वह सबके प्रति सच्चा रहता है। सोहनलाल जी को मैं युग-कवि मानता हूं।"[१०] वस्तुत: युगकवि युग की समस्त चेतना को आत्मसात करता हुआ तदनुसार युगीन आशा-आकांक्षाओं की पूर्ति के अतिरिक्त मानव के चरम उत्कर्ष की मंगल कामना युक्त काव्य-साधना करता है। इस दृष्टि से द्विवेदी जी का कवि श्रेष्ठ साधक है। उनके काव्य के अनुशीलन पर अध्येता को यह प्रतीति होती है कि उनकी प्राय: समस्त रचनाओं में उनकी एकान्त साधना प्रतिबिंबित होती है। अपने लक्ष्य की पूर्ति के हेतु उनका कवि सदैव सजग एवं सावधान है।

द्विवेदी जी का काव्य अभिधामूलक होते हुए भी उसके कलागत सौंदर्य का अनुशीलन करने के लिए निम्नलिखित अभिव्यक्ति माध्यमों को परिलक्षित किया जा सकता है। ये हैं -

(क) भाषा एवं शब्द-संयोजना ।

(ख) शब्द-शक्ति का सौन्दर्य ।

(ग) अलंकार विधान ।

(घ) बिंब विधान ।

(च) छन्द योजना ।

(क) भाषा एवं शब्द संयोजना :

भाषा मानव की भावाभिव्यक्ति एवं विचार-विनिमय का सर्वोत्कृष्ट माध्यम है । काव्य का समस्त कथ्य भाषा के माध्यम से ही व्यक्त होने के कारण काव्य के क्षेत्र में भाषा का अप्रतिम महत्व है । काव्य-भाषा का स्वरूप सामान्य बोलचाल की भाषा से भिन्न होता है । उसमें भावाभिव्यंजना रमणीय होती है जिसमें कवि का व्यक्तित्व प्रधान रहता है । कवि अपनी हृदयगत अमूर्त अनुभूतियों को भाषा के माध्यम से मूर्त करता है । सामाजिक परिवेश का अभिन्न अंग होने के कारण कवि की भाषा में व्यक्ति के साथ-साथ समाज का भी हृदय बोलता है । काव्य-भाषा की विशिष्टता को निर्दिष्ट करते हुए डा० कमलकान्त पाठक का यह वक्तव्य यहाँ उल्लेखनीय है, 'भाषा ही वह साधन है जिसके द्वारा काव्याभिव्यक्ति संभव और संपन्न होती है । काव्यकृति में अर्थ-संकेत मात्र की योजना नहीं होती, उसे भाव-सम्प्रेषण में भी समर्थ बनाया जाता है । कवि की अनुभूतियाँ जितनी ही सुगठित होंगी, भाषा उतनी ही मूर्तिमती होगी। भाषा पर जहाँ कवि का पूर्ण अधिकार अपेक्षित होता है, वहाँ भाषा की ~~भस~~ भी समृद्धि आवश्यक ~~समम~~ समझी जाती है ।'[१२] कहना न होगा कि हमारे आलोच्य कवि द्विवेदी जी की भाषा, जनभाषा होने के साथ-साथ केवल अर्थ-बोध ही को लक्ष्य बनाकर नहीं चली, अपितु सुगठित भाव-संप्रेषण की भी क्षमता लिए हुए है । कवि का भाषा पर असाधारण प्रभुत्व है । अमूर्त भावों को सरलतम शब्दावली में मूर्त बनाकर प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता द्विवेदी जी में परिलक्षित होती है । उनकी भाषा शुद्ध और सरल है ,

जिसमें क्लिष्टता एवं दुरूहता को प्राय: कोई स्थान नहीं है । द्विवेदी जी की कविताओं की लोकप्रियता का प्रधान कारण उनकी भाषा की उपर्युक्त विशेषता ही है । भाषा का सहजता एवं सादगी के विषय में कवि के निजी दृष्टिकोण को हम पूर्ववर्ती पृष्ठों के विवेचन के अन्तर्गत लक्ष्य कर चुके हैं । इस सन्दर्भ में महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के काव्य-भाषा विषयक अभिमत प्रस्तुत किया जा रहा है जिसका मानो पं० सोहनलाल द्विवेदी ने भलीभाँति परिपालन किया है । 'भाव चाहे जैसा ऊँचा क्यों न हो, पेचीदा न होना चाहिए। वह ऐसे शब्दों द्वारा प्रकट किया जाना चाहिए जिनसे सब लोग परिचित हों । मतलब यह कि भाषा बोलचाल की हो क्योंकि कविता की भाषा बोलचाल से जितनी ही अधिक दूर जा पड़ती है, उतनी ही उसकी सादगी कम हो जाती है । बोलचाल का मतलब उस भाषा से है जिसे खास और आम सब बोल सकते हैं । विद्वान् और अविद्वान, दोनों जिसे काम में लाते हों । इसी तरह कवि को मुहावरे का भी खयाल रखना चाहिए । जो मुहावरे सर्वसम्मत हैं उन्हीं का प्रयोग करना चाहिए ।'[१३] महावीरप्रसाद जी ने भाषा में सादगी को अनिवार्य समझा है जिससे क्लिष्टता एवं दुरूहता से बचा जा सके । काव्य-भाषा का स्वरूप सामान्य जनभाषा से कुछ अंशों में भिन्न होते हुए भी वह उससे ही जीवंत शक्ति ग्रहण करता है । सोहनलाल जी की भाषा में प्राय: सर्वत्र सादगी एवं साहजिकता दृष्टिगत होती है । भाषा की सर्वजन-सुलभता ही उनके काव्य को लोकप्रिय बना देती है । उपरिनिर्दिष्ट उनके काव्य-सर्जन के लक्ष्य की पूर्ति में उनकी लोकयोग्य भाषा ने महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया है । इसका यह अर्थ नहीं कि उन्होंने अपनी भाषा को सरलतम बनाने का कोई विशेष प्रयत्न किया है । उनकी भाषा में जो साहजिक व धारावाहिक प्रवाह दृष्टिगत होता है, वह उसे अनावश्यक सरलता एवं क्लिष्टता से बचा लेता है । उनकी भाषा का सर्वोत्कृष्ट गुण उनके भाव और भाषा के सामंजस्य में है । यही कारण है कि प्रमाता उनकी कविता के पठन के साथ-साथ भावात्मक तल्लीनता का अनुभव करता है । प्रमाता को अपने भावों के प्रवाह में बहा ले जाने की अद्वितीय प्रभावान्विति युक्त शक्ति उनकी भाषा में प्राय: सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है ।

भाषा की इकाई शब्द है और वही उसका मूलाधार भी । यह काव्य का शरीर एवं रूप है । प्रमाता के मस्तिष्क एवं हृदय को सर्वप्रथम प्रभावित करनेवाला तत्व शब्द ही है ।[१४] तदर्थ उसके समुचित चयन एवं समंजन से भाषा परिष्कृत एवं प्रभावोत्पादक बनती है । विविध स्रोतों से शब्दों का आकलन करते हुए कवि उन्हें काव्य के विषयानुरूप साँचे में ढाल व लेता है । अर्थ-संकेत के अतिरिक्त शब्द का निजी प्रभाव व सौंदर्य भी रहता है जो अलंकृत शब्दों के साथ-साथ उपनागरिका, परुषा व कोमला वृत्तियों के समुचित प्रयोग के द्वारा व्यक्त होता है । इतना ही नहीं लघु-गुरु शब्दों की एक विशिष्ट क्रम में संयोजना छंद, लय एवं संगीत-सृष्टि का निर्माण करती है ।[१५] इस प्रकार काव्य में प्रयुक्त शब्द के द्वारा भाव और अर्थ-द्योतन के अतिरिक्त एक प्रकार की विशिष्ट गति एवं व स झंकृति प्रकट होती है । समुचित प्रयुक्त शब्द ही एक कलात्मक सौंदर्य प्रकट करते हुए कवि के हृदयस्थ भाव को रूपायित करने का यत्न करता है ।

~~भाषा की इकाई शब्द है और वही उसका मूलाधार भी । यह काव्य का शरीर एवं रूप है । प्रमाता~~

द्विवेदी जी की शब्द-संपदा विपुल है । सरल शब्दावली का प्रयोग होते हुए भी उनका शब्द-संयोजन एक विशिष्ट प्रकार का है जिससे अर्थ के साहजिक द्योतन के साथ-साथ विशिष्ट सौंदर्य उत्पन्न हुआ है । शब्द संयोजना की उपर्युक्त प्राय: सभी विशेषताएँ द्विवेदी जी की कविता में पाई जाती हैं । तत्सम्, तद्भव, देशज, विदेशी नादमूलक आदि प्राय: सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग उनके काव्य में परिलक्षित होता है । शब्दों के उक्त सभी प्रकारों के समुचित प्रयोग का क्रमश: सोदाहरण अध्ययन किया जा रहा है ।

तत्सम :

द्विवेदी-काव्य के अध्ययन-अनुशीलन पर यह देखा जा सकता है कि सरल

शब्दावली का प्रयोग करनेवाला कवि संस्कृत के तत्सम शब्दों का भी विपुल मात्रा में प्रयोग करता है । यह प्रवृत्ति उनके प्राय: सभी काव्य-ग्रंथों में समान रूप से परिलक्षित होती है । प्रश्न उठता है कि जनभाषा का कवि तत्सम शब्दावली का विशेष प्रयोग किस उद्देश्य से करता होगा ? साथ ही यह भी देखना होगा कि उनके द्वारा प्रयुक्त तत्सम शब्दावली कवि के भावों, विचारों एवं संवेदनापूर्ण आवेगों के संप्रेषण में कहाँ तक सहायक सिद्ध हुई है ? वह कहीं इस प्रक्रिया में अवरोध तो उपस्थित नहीं करती ? वह भाषा में कृत्रिमता एवं अरुचि का वातावरण तो निर्मित नहीं करती ? इन जिज्ञासाओं की पूर्ति के लिए प्राय: प्रत्येक काव्य-ग्रंथ से कतिपय शब्दों एवं उदाहरणों को उद्धृत करने का यत्न किया जा रहा है ।

(१) भैरवी :

श्रृंखला, प्रतिमूर्ति, भृकुटि, धर्माडंबर, करसंपुट, पुण्यश्लोक, रजत-चंद्रिका, दिव्य-वसन, नभ-चुम्बी, क्रीडागृह, नखशिख, यश:स्तम्भ, ऋषिपत्तन, शास्त्रालय, शंख-ध्वनि, ध्वस्त, निष्ठुर, उद्भ्रान्त, उत्फुल्ल, मधु-मंदिर, निर्वासित, तप-निरत, समाहृत, दुर्निवार, मुखचन्द्र-कान्ति, प्रताड़ित, विक्षिप्त, क्रान्तदर्शी, उद्ग्रीव, आजानबाहु, त्राणयाचक, कटिकिंकिणी, प्रलय-वह्नि, धूम्रकेतु, भस्मसात्, दिग्मंडल, इत्यादि ।

कवि की प्रथम कृति 'भैरवी' की रचनाओं का अनुशीलन करने पर यह प्रतीत होता है कि प्राय: उन्होंने वंदना, व्यक्तित्व-निर्माण, गुरु-गंभीर चिन्तन, संस्कृति-परक विचार, जोश एवं उत्साहपूर्ण भावों तथा विचारों के संप्रेषण जैसे प्रसंगों में तत्सम शब्दावली का विशेष प्रयोग किया है । यथा-

'अर्चना के रक्तकण में एक कण मेरा मिला लो ।
वंदना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो ।'[१६]

यहाँ 'अर्चना', 'रक्तकण', 'वंदना', 'स्वर' आदि तत्सम शब्दों का विषयानुसार एवं हिंदी की प्रवृत्ति के अनुरूप प्रयोग किया गया है ।

व्यक्तित्व की स्थापना करते समय भी कवि ने तत्सम-शब्दावली का प्रयोग किया है । चाहे गांधी जी के युगीन व्यक्तित्व की स्थापना हो संस्कृति के संवाहक पंडित मदनमोहन मालवीय जी या राणा-प्रताप जैसे राजनीतिक नेता के व्यक्तित्व का निर्माण हो । गांधी जी के युगीन व्यक्तित्व का उद्घाटन करते हुए कवि लिखते हैं-

'युग-परिवर्तक, युग-संस्थापक,
युग-संचालक , हे युगाधार ।
युग-निर्माता, युग-मूर्ति ! तुम्हें
युग-युग तक युग का नमस्कार ।'[१७]

यहाँ प्राय: सभी पंक्तियों में तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग परिलक्षित किया जा सकता है । गांधी जी के युगीन व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर आधारित युगीन महत्व को अंकित करने का प्रयास किया गया है । तत्सम शब्दावली का प्रचुर प्रयोग करने पर भी भाषा में क्लिष्टता या दुरूहता दृष्टिगत नहीं होती । तत्सम शब्द कवि के भावों के संवाहक बनकर प्रेषणीयता में अभिवृद्धि कर रहे हैं । हिन्दी भाषा में प्राय: सर्व प्रचलित वे शब्द भाषा के गौरव को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुए हैं । यही विशेषता निम्नलिखित उदाहरणों में भी परिलक्षित की जा सकती है । यथा-

'श्रेय कहूँ, या प्रेय कहूँ
या मैं तुमको ध्रुव-ध्येय कहूँ ?
तुम इतने महान्, जी होता
मैं तुमको अज्ञेय कहूँ ।'[१८]

और- `निर्वासित के निष्ठुर प्रण में
घुंघवाती रक्त-चिता रण में,
बाणों के भीषण वर्षण में
फौहारे -से बहते व्रण में।`[१६]

`तुलसीदास` पर लिखित लम्बी कविता में संस्कृति के उपासक तुलसी के व्यक्तित्व-निर्माण एवं गहन चिंतन के प्रसंगों में भी तत्सम शब्दावली का प्रचुर प्रयोग हमें प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ-

`क्या यती, व्रती, क्या गृही, रती,
करते सबको गति मति प्रदान,
नंदित स्वदेश वंदित विदेश,
हे तुलसी तुम युग-युग महान्।`[२०]

रत्नावली के वैराग्यपूरित वाग्बाणों को सुनने पर तुलसी के व्यक्तित्व में जो `काम` से `राम` तक का उर्ध्वमुखी संक्रमण हुआ उसे व्यक्त करते हुए कवि लिखते हैं-

`जीवन के निशिदिन-पृष्ठों
पर, जिनमें अंकित था `काम` काम,
क्या परिवर्तन, क्या आवर्तन ?
वे गूँज उठे बन `राम राम`।
नित संतशरण, नित संतचरण,
सद्ग्रन्थ पठन, सद्ग्रन्थ मनन,
स्वाध्याय बना जीवन का क्रम,
नित कामदमन, नित रामरमण।`[२१]

स्वाध्याय के द्वारा तुलसी के की 'काम से राम' तक की सुदीर्घ यात्रा को कितनी सरलता से समझाया गया है ? तत्सम शब्दावली का प्रयोग कलागत सौन्दर्य में अभिवृद्धि कर रहा है । साथ ही 'परिवर्तन', 'आवर्तन' की गूंज तथा स,त,न वर्णों की पुनरावृत्ति एवं काम-राम जैसे अनुप्रासयुक्त शब्दों की अनुगूंज भावाभिव्यक्ति में नाद-सौंदर्य उत्पन्न करती है । इसके अतिरिक्त अपने ओजपूर्ण भावों व विचारों का वेगपूर्ण प्रस्फुटन जो उनके 'विप्लव-गीत' में हुआ है वह भी तत्सम शब्दावली प्रचुर है । यथा-

'खंड खंड भूखंड, अंड ब्रह्मांड
पिंड नभ में डोलें,
मेरे मृत्युंजय की टोली
जब माँ की जय जय बोलें ।
वज्रपात हो, बिजली कड़के
थर-थर कांपे सब थ जल-थल
अतल,वितल,पाताल,रसातल
भूतल निखिल सृष्टि-मंडल ।'[22]

इन पंक्तियों में भी तत्सम शब्द प्रचलित तथा तद्भव रूपों से ऐसे घुले-मिले से हैं कि वे अलग से जोड़े हुए नहीं लगते । प्रसादगुण के अतिरिक्त ओजगुणपूर्ण अभिव्यंजना में भी कवि, तत्सम शब्दावली का सहज उपयोग कर सकते हैं । 'ल' की पुनरावृत्ति के कारण घोष वर्णों का प्रयोग होने पर भी भावाभिव्यंजना में सहजता का निर्वाह हुआ है ।

(२) प्रभाती :

जगधात्री, कल्मष, आलोक, ध्वंसावशेष, लक्ष्य-संधान, गर्तगहन, रक्त-रश्मियाँ,

प्रतियाम, परमोज्ज्वल, प्रकर्षमय, प्रतिशोध, शुभ्रांचल, तपोनिधि, समुत्सुक, अनुलेपन, रणाग्नि, निष्काम, क्रीड़ा, नव-रूप-गंध, अभिसिंचित, आह्लादित, क्रान्ति, रत्नाभरणा, पाद-प्रक्षालन, शस्यश्यामला, क्षुधित, प्रचलित, हुलसित, इत्यादि ।

'प्रभाती' के प्रारंभ में भावों की रानी कविता से उद्बोधन करते हुए कवि कहते हैं -

'तुम जगद्धात्रि । जग कल्याणी ।
तुम महाशक्ति । सोचो क्या हो,
कविते । केवल तुम नहीं अश्रु
जीवन में जय की आत्मा क हो ।
गाओ आशा के दिव्य गान
गाओ, गाओ भैरवी तान,
युग युग का घन तम हो विलीन
फूटे युग में नूतन विहान ।'[23]

'जगद्धात्री, जगकल्याणी, महाशक्ति, कविते, आत्मा, दिव्यगान, घन तम, विलीन, नूतन विहान' आदि तत्सम शब्दों का प्रयोग होने पर भी काव्य-पंक्तियां अर्थद्योतन में बोझिल नहीं हुईं । युगीन आवश्यकताओं के अनुरूप विषयवस्तु-परिवर्तन का दिशा संकेत कवि कितनी सरलता से कर देता है । तत्सम शब्दावली यहां भाव को अधिक शक्ति एवं क्षमता के साथ प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध हुई है । इसके अतिरिक्त 'प्रयाण गीत' में जहाँ एक विशिष्ट प्रकार की गति, लय एवं नाद की आवश्यकता रहती है, वहाँ भी तत्सम शब्दावली का प्रयोग करके 'न, त' वर्णों की पुनरावृत्ति एवं 'अकारान्त' शब्दों के आवर्तन से कवि ने अपने लक्ष्य की पूर्ति की है -

'घन गर्जन, हिम वर्षण ।
तिमिर सघन, तड़ित पतन ।
शिर उन्नत, मन उन्नत ।
प्रण उन्नत, जात विक्षत ।
चल रे चल ।
अडिग अचल ।'[२४]

विषम परिस्थितियों में भी अडिग और अचल रहकर सगर्व अपने इप्सित फल की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहने का बोध कवि बड़ी सरलता से प्रदान करता है । गांधी जी के आमरण अनशन करने की घोषणा से विक्षुब्ध कवि का मन बलात् बापू के गहन गंभीर व्यक्तित्व को चित्रित करता हुआ कह उठता है -

'हे प्रबुद्ध ।
आज तुम करने चले पुन: युद्ध ।
अग्नि में प्रवेश कर बनने चले आत्म शुद्ध
मुक्त चले करने निज द्वार रुद्ध
हे अक्रुद्ध ।'[२५]

'प्रबुद्ध, युद्ध, आत्मशुद्ध, रुद्ध, अक्रुद्ध' आदि तत्सम शब्दों के अन्त्यानुप्रास युक्त प्रयोग के कारण व्यक्तित्व का गांभीर्य तो प्रकट होता है । साथ ही विशिष्ट नाद का भी सर्जन होता है जो भावाभिव्यक्ति में साहाय्य प्रस्तुत करते हुए प्रमाता के मन को गांधी जी के व्यक्तित्व की ओर आकर्षित करता है ।कहीं-कहीं पर केवल तुक पूर्ति के लिए तत्सम शब्द प्रयुक्त हुए हैं और इस कारण उनके प्रयोग में वह सहजता नहीं दृष्टिगत होती । यथा-

'आज हुए संताप दुरित, अभिशाप पाप सब खर्व,
आज दिवस है व्रत समाप्ति का महाशांति का पर्व ।'[२६]

इसमें `खर्व` का प्रयोग पर्व के वजन पर ही है । अतः कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि उनकी कविता में तत्सम पदावली जनभाषा-प्रयोग को प्रायः बोझिल नहीं बनाती ।

(३) पूजागीत :

`वीणापाणि, निरालम्ब, मलयज, तुषार-निपात, दुर्दैव, स्तन्यपयमयि । अमृत-प्राविनि, निविड़ नीरव निशा, स्निग्धमना, उत्कृण्ण, प्रणय-अंक-प्रमादिनी, मर्दन, त्रिनयन, विषण्ण, अर्ध-जात-वसना, क्वणित, पददलित, प्राणोन्मादिनी, आनंदकर, निरग्नि, नीलोदधि, रण-प्रण-व्रणमय, निशिवासर, तिरोहित, अवनीतल, प्रणिपात, निमज्जित आदि ।

`पूजागीत` में प्रमुख रूप से चार प्रसंगों को लेकर रचनाएँ लिखी गई हैं । मातृ-वंदना, जागरण, बलिदान एवं नवनिर्माण के गीतों में से कतिपय उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है -

`स्तन्य पयमयि । अमृत स्राविनि ।
जननि । उठ ओ जन्मदायिनी ।
कोटि कोटि सपूत तेरे
तू नहीं हतभागिनी ।
जाग । माँ । ओ जगद्धात्री ।
तू दया की बन न पात्री ।
ले त्रिशूल सतेज कर में,
ओ त्रिशूल बिनाशिनी ।`[२८]

और- `तुम उठो माँ । पा नवल बल,
दीप्त हो फिर भाल उज्ज्वल ।
इस निविड़ नीरव निशा में
किस उषा की रश्मि लाऊँ?
बन्दिनी तव वन्दना में
कौन सा मैं गीत गाऊँ ?`[२९]

प्रथम उद्धरण में ओजपूर्ण उत्साह दृष्टिगत होता है तो द्वितीय में प्रसादमधुरपूर्ण उमंग । दोनों में तत्सम शब्दावली का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है । फिर भी भाव के धारावाहिक प्रवाह में कहीं कोई व्यवधान उपस्थित नहीं हुआ है । दोनों में छन्दगत नाद सौंदर्य विद्यमान है जो पाठक को बारम्बार गाने के लिए आकृष्ट करता है ।

जन-समाज को उसकी निद्रा से जगाते हुए कवि अपने ओजपूर्ण भाव को तत्सम शब्दावली में इस तरह व्यक्त करते हैं -

'बिसुध ! दुर्बल है विवश है ?
केसरि होकर अवश है ?
जाग ! भर हुँकार, कड़ियाँ
छिन्न हों अवशेष ।
जाग सोये देश ।'[30]

और- जाग ! प्रलयंकर भयंकर !
जाग ! त्रिनयन ! जाग शंकर !
भस्म हो अभिशाप युग का
मुक्त हो गति राष्ट्र जीवन ।
जाग ! जनगण !'[31]

राष्ट्र के यज्ञ में आवश्यकतानुसार आत्मसमर्पण की बलिदानी भावना को व्यक्त करते हुए तत्सम पदावली युक्त काव्य-पंक्तियाँ इस तरह प्रस्तुत करते हैं -

'कोटि कोटि तुम जिसके त्राता ।
क्षुधित तृषित अ-वसन वह माता ।
अमृत दान दो अमृत-पुत्र है ।
या लै गरल पियो ।'[32]

औंर- 'स्वत्व लो, अस्तित्व देकर,
पियो नव अमरत्व के कण ।
आज है रण का निमंत्रण ।'[33]

उनकी तत्सम पदावली का एक अन्य उल्लेखनीय गुण है -सामासिकता, जिसके माध्यम से वे सीमित शब्दों में विस्तृत अर्थ को भरने में सचेष्ट कहे जा सकते हैं -

'जागे जग में मंगल प्रभात ।
करुणारुण उषा रंगे अंबर,
नीलोदधि पहने पीतांबर,
~~नीलोदधि पहने पीतांबर,~~
उज्ज्वल हिमाद्रि हो स्वर्णगात ।---जागे
हो स्नेह स्निग्ध मानव का स्वर,
यह आत्ममिलन बन जाय अमर,
फिर, आवे कभी न दुखद रात ।
जागे जग में मंगल प्रभात ।'[34]

यहाँ तत्सम बहुला भाषा का प्रयोग कवि की कामना को गौरव प्रदान करता है । सहज, सरल भावाभिव्यक्ति के साथ-साथ कवि की भाषा गागर में सागर भरने की भी क्षमता रखती है । उनकी शब्द-संयोजना न केवल शब्द-संपदा को ही प्रकट करती है, अपितु भाषा के प्रभुत्व एवं शब्दों के उचित प्रयोग को भी व्यंजित करती है ।

(४) युगाधार :

कान्ति-घोष, उन्नत ललाट, श्रुतिपुट, वेष्ठित, निद्रित, अभ्यागत, अजस्र, सौर्यमंडल, सच्चित्सुख, तिमिरावृत, युद्धरत, श्रमसीकर, उच्छ्वसित, शिरस्त्राण,

अनृत, रण-प्रांगण, चन्दन-चर्चित, निष्प्रभ, कान्ति-दर्प, अनुष्ठान, म्रियमाण, परिधेय, मधुपर्क, गतानुगतिका, ध्वंस-सृजन, अभेद्य, इत्यादि ।

'युगाधार' में कवि के वक्तव्यानुसार युग की राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक धूम्र-रेखाएँ प्रस्तुत हुई हैं ।[३५] तदर्थ इन रेखाओं का एक-एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है । राजनीतिक धूम्र-रेखा का चित्र प्रस्तुत है -

'कोटि-कोटि चरणों की ध्वनि में
कोटि-कोटि स्वर के घर्षों ~~कन~~ में ।
आज राष्ट्र- निर्माण हो रहा,
अपना शत- शत संघर्षों में ।'[३६]

भारत की आर्थिक अवदशा के चित्रांकनों में कवि ने प्राय: तत्सम शब्दावली का प्रयोग बहुत कम किया है । फिर भी एक उदाहरण प्रस्तुत है - जो मजदूर के आत्मबल को उजागर करते हुए लिखा गया है -

तू ब्रह्मा बिष्णु रहा सदैव
तू है महेश प्रलयंकर फिर ।
हो तेरा तांडव शंभु, आज
हो ध्वंस, सृजन मंगलकर फिर ।'[३७]

सामाजिक अन्याय, अनीति, शोषण, रूढ़ियाँ, अंध-विश्वास' आदि दूषणों को दूर करने के लिए निस्वार्थ समाज-सेवी युवकों की आवश्यकता पर बल देते हुए कवि कहते हैं -

'ब्रह्मचर्य से मुखमंडल पर
चमक रहा हो तेज अपरिमित,
जिनका हो सुगठित शरीर
दृढ़ भुजदंडों में बल हो शोभित,
जिनका हो उन्नत ललाट
हो निर्मल दृष्टि ज्ञान से विकसित
उर में हो उत्साह उच्छ्वसित
साहस शक्ति शौर्य हो संचित ।'[३८]

तत्सम शब्दावली के प्रयोग में कवि पूर्ण सजग हैं। उन्होंने प्राय: सर्वत्र अनुप्रासों के द्वारा संस्कृत शब्दों की एक ओर क्लिष्टता एवं दुरूहता को दूर किया है तो दूसरी ओर उनमें नादात्मक ध्वनि उत्पन्न करते हुए उन्हें श्रुतिमधुर एवं प्रेषणीय बनाने का यत्न किया है।

भारत के ऐतिहासिक महत्त्व को घोषित करते हुए तत्सम शब्दावली युक्त भावाभिव्यक्ति इस तरह करते हैं -

'विश्वंभर के करुणा-बल पर
युग-युग दुर्जय देवेश देश ।
वह महिमामय अपना भारत
वह गरिमामय सुन्दर स्वदेश ।'[३९]

(५) चेतना :

अरुणांचल, उपाख्यान, अन्त्यज, उत्तरीय, अहर्निशि, अवसाद क्रन्दन, नीराजना, विश्ववंद्य वरेण्य, नृशंसता, उद्दीपक, यामिनी, स्वर्णकलश, हिम-किरीटिनी, अभीष्ट, प्राणपद्म, विमुक्त-विहग, दिग्दिगन्त, मृतकपिण्ड, महाप्रयाण, अविनश्वर,

विषाक्त, अभ्यस्त, दिग्भ्रम, अभ्युत्थान, आर्द्र इत्यादि ।

'चेतना' में स्वतंत्रता पूर्व, स्वतंत्रता के आगमन पर तथा स्वातंत्र्योत्तरकालीन युगीन चेतना के स्वर मिलते हैं । इन त्रिविध प्रकार की चेतना के विविध चित्रों में प्रयुक्त तत्सम शब्दावली के उदाहरण निम्नांकित हैं । राष्ट्र के देवता बापू की नीराजना के प्रसंग में कवि लिखते हैं -

'देवता नव राष्ट्र के नवराष्ट्र की नव अर्चना लो
विश्व वंद्य वरेण्य बापू । विश्व की नव वंदना लो ।'[४०]

यहाँ प्रथम पंक्ति में तत्सम शब्दावली में 'न' वर्ण की पुनरावृत्ति तथा द्वितीय पंक्ति में 'व' की पुनरावृत्ति से एक विशिष्ट नादात्मक अनुगूंज निष्पन्न होती है जो नीराजना के समय की लयात्मक अनुभूति कराती है ।

स्वतंत्रता के आगमन कालीन हर्षोत्फुल्ल मन:स्थिति का चित्र अंकित करते हुए कवि कहते हैं -

'आज की उषा नवीन, आज की दिशा नवीन,
आज किरन किरन थिरक रही ले प्रभा नवीन,
आज श्वास है नवीन, आज की पवन नवीन,
प्राण-प्राण में पराग, सौरभ स्पंदन नवीन ।'[४१]

प्रकृति और प्राणों में नाविन्य की स्पंदनशील अनुभूति तत्सम शब्दों के उचित प्रयोग के द्वारा कराने की चेष्टा करते हैं । इन पंक्तियों में कवि ने दो स्थानों पर अनुकूलता के लिए आवश्यक परिवर्तन किया है । 'किरण' के स्थान पर 'किरन', 'न' की पुनरावृत्ति के संदर्भ में लिखा है तथा सभी स्त्रीलिंग शब्द-प्रयोगों के साथ-साथ 'पवन' भी स्त्रीलिंग के रूप में प्रयुक्त हुआ है ।

'मुक्ति का मणि मुकुट अनुपम,
मलिन कर पाये न तमभ्रम,
राष्ट्र की तुमको शपथ,
यह राष्ट्र की दृढ़ याचना है
मुक्ति के मंगल दिवस की
आज नूतन अर्चना है ।'[४२]

बापू के निधन पर निराश देश को हिम्मत एवं धैर्य प्रदान करते हुए कवि कहते हैं -

'अनुशोचन उनका जो कायर,
अनुशोचन उनका जो पामर,
व्यथित न कर बापू की आत्मा, कर क्रन्दन ध्वनि शेष ।
हिम्मत हार न मेरे देश ।'[४३]

'बापू' को श्रद्धांजलि देते हुए कवि तत्सम शब्दावली का प्रयोग इस तरह करते हैं -

'यदि न अहिंसा के द्वारा
होती स्वतंत्रता प्राप्त,
तो न राष्ट्र के प्राणों में
होती सहिष्णुता व्याप्त ।
ओ मानव । गांधी का सबसे
बड़ा यही आराधन ।
पशुबल त्याग, आत्मबल से
नित करो विजय सम्पादन ।'[४४]

गांधी जी के सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्त को कवि ने तत्सम शब्दावली के द्वारा सहज-सरल शैली में बहुत कम शब्दों में सरलता से अभिव्यक्त कर दिया है ।

वस्तुत: सिद्धान्त कथन या चिन्तनपूर्ण विधान के लिए अन्य कवि कठिनतम शब्दों का प्रयोग कहीं उपमा, रूपक या उत्प्रेक्षा जैसे अलंकारों का सहारा ढूंढते हैं, वहाँ द्विवेदी जी सरलतम शब्दावली में बिना किसी अलंकार के स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्ति कर देते हैं। यह उनकी भाषा की विशेषता है।

(६) मुक्तिगंधा :

'मुक्तिगंधा' में संकलित रचनाओं का अनुशीलन करने पर यह प्रतीत होता है कि कवि तत्सम शब्दावली का प्रयोग करने का आग्रह कम रखता है। प्रमुखतया तद्भव और देशज शब्दों का प्रयोग अधिक मिलता है। इसका यह अर्थ नहीं कि इस कृति में तत्सम शब्दावली युक्त काव्य-पंक्तियाँ उपलब्ध नहीं हो सकतीं। किन्तु इसका प्रमाण बहुत कम है। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं -

'प्रेयस ही नहीं, श्रेयस का ले विजय केतु
चलो पार करें बन्धु, दुस्तर भवसिन्धु सेतु।'[४५]

और- 'इसका भी कारण कभी सोचा बन्धु क्या है
आत्मबोध भूल -
युगबोध अभिशप्त हम।
मात्र अर्थबोध,
अर्थ तृष्णा-सन्तप्त हम।।
जीवन नहीं धन है जीवन आत्मदर्शन है।'[४६]

उपर्युक्त सभी राष्ट्रीय रचनाओं का अनुशीलन करने पर यह कहा जा सकता है कि कवि तत्सम शब्दावली का प्रयोग विशिष्ट प्रसंगों में करता है। मातृभूमि की वंदना-अर्चना के प्रसंग में, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक व्यक्ति के व्यक्तित्व निरूपण में, गहन चिन्तन एवं आत्मदर्शन के प्रसंग में, व्यथापूर्ण या हर्षोल्फुल्ल मन:स्थिति में तथा

कहीं-कहीं जागरण के प्रसंग में कवि तत्सम बहुला भाषा का प्रयोग करता है । जैसा कि निर्दिष्ट किया जा चुका है इस प्रवृत्ति से अर्थ गौरव की वृद्धि हुई है । भाषा क्लिष्ट या दुरूह नहीं बनी है । भावाभिव्यक्ति सहज एवं सरस हुई है । भाव और भाषा दोनों का सामंजस्य प्रायः सर्वत्र विद्यमान है । हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है अतः वे अंगूठी में नग की तरह जड़े गये लगते हैं ।

अब कवि की सांस्कृतिक रचनाओं का अनुशीलन किया जा रहा है । `वासवदत्ता`, `कुणाल` तथा `विषपान` उनकी सांस्कृतिक रचनाएँ हैं । इन रचनाओं में संस्कृत बहुला भाषा का प्रयोग अधिक है । किन्तु यह ध्यातव्य है कि पांडित्य-प्रदर्शन का उद्देश्य इसमें नहीं है । सहज-सरल भावाभिव्यक्ति में अनायास ही ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ हो ऐसा प्रतीत होता है । इससे कवि की शब्द-सम्पदा एवं उसका यथोचित विनियोजन परिलक्षित होता है । अनावश्यक विस्तार भय से संक्षेप में उक्त कृतियों का सोदाहरण अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

(७) वासवदत्ता :

दिवांगना, प्रतिस्पर्धा, कान्तिमान, दिव्यरूप, पाणिपल्लव, संपुटित, कुचकलशी, परिरंभण, पंचाग्नि, क्लान्तचित्त, भ्रान्तदेह, रूपलुब्ध, सतृष्णा, अर्धमीलित, मधुपर्क, सौख्य, अप्सरियां, हृत्तन्त्री, विभावरी, नव मृगमद-पराग, निशीथ, निकुंज, श्रुति-पुट, निर्भ्रान्ति, निश्शंक, उर-पद्म, रूप-लावण्य, दर्प-दलन, सद्यस्नात, दुग्धमुग्ध, अनिंद्य, अनवद्य, आत्मविस्मृति, नितान्त, प्रतिध्वनि, अनुरक्त, उच्छ्वसित, वज्रघोष, उपत्यका, प्रतिघात, कुलांगना, पाणिग्रहण, मधु-सुधा-स्नात, संदेह-कीट, विभीषिका, दुर्भिक्ष, निरभ्र, हरीतिमा, इत्यादि । `वासवदत्ता` उपाख्यान के अंतर्गत तथागत के दिव्यरूप की झांकी कराते हुए कवि तत्सम शब्दावली का सुष्ठुप्रयोग करते हैं -

`गौतम थे
तरुण-अरुण-करुण श्री से वरुण सम
कान्तिमान, तेजमान,

'कितनी ही सुन्दरियाँ, देख-देख दिव्य रूप
होतीं बलिहार श्री चरणों में तथागत के ।'[४७]

और- 'महाभिक्षु पहने एक गैरिक परिधान
घूमते थे स्थान स्थान,
मुखम्लान,
करने को बुभुक्षित, तृषित, नग्नजन का त्राण,
पीड़ित अकाल
कालग्रसितों का करने त्राण ।'[४८]

उक्त दोनों उदाहरणों में 'गौतम' तथा 'महेन्द्र' महाभिक्षु' के गौरवपूर्ण व्यक्तित्व का चित्र उभारते हुए जिन तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है, उससे उनके क्रमश: दिव्य रूप एवं निस्वार्थ समाज-सेवा करनेवाले व्यक्ति का रूप भलीभाँति व्यक्त होता है जो कवि का अभिप्रेत है । यहाँ तत्सम शब्दों की एक विशेषता यह दृष्टिगत होती है कि प्राय: प्रत्येक शब्द उनके व्यक्तित्व के एक-एक पक्ष को उद्घाटित करता है।

(८) कुणाल :

शरदभ्र-सदृश, प्रशस्त, अतिकुल, उद्भ्रांत, आत्मप्रबोध, शंखध्वनि, कनक-कुंडल, स्वर्णछत्र, वामपार्श्व, प्रक्षालन, वातायन, प्रकृतिस्थ, मिलनोत्कंठा, रागरंजिता, नीलांचल, द्रुतगति, अभिनंदित, प्रार्थिता, निर्धूम, त्रिश-त्रिदिप, जलधिकूल, पुरस्कार, उपोद्घात इत्यादि ।

कुणाल के अनंग-सम व्यक्तित्व के प्रति आकर्षित तिष्यरक्षिता अभिसारिका नायिका की तरह उसके सम्मुख अपना प्रणय निवेदन करने जब जा रही है तब सोलह-श्रृंगार किये हुए उस नायिका का अनेकविध उपमानों को प्रस्तुत करते हुए तत्सम शब्दावली

प्रचुर प्रयोग इस तरह परिलक्षित किया जा सकता है -

'उन्नत कुच कुंभों को लेकर,
फिर भी, युग युग की प्यासी-सी,
आमरण चरण लुंठित होने
वाली, प्रेयसि-सी, दासी-सी,
रागारुण-रंजित उषा-सी,
मृदु मधुर मिलन की संध्या-सी,
माधवी, मालती, शेफाली,
बेला-सी, रजनीगंधा-सी,
शत-शत संकल्प-विकल्पों को
कल्पों में, कल्प बनाती-सी
साकार कामना बनी चली,
तम में नव ज्योति जगाती-सी
आई कुणाल के पार्श्व
तिष्यरक्षिता सजे सोलह शृंगार,
रति चली मुग्ध करने जैसे,
रूठे अनंग को, ले उभार ।' ४६

कवि ने यहाँ मालोपमा करते हुए उपमाओं की लड़ी-सी बरसा दी है । ऐसा करने में उन्होंने तत्सम शब्दों का सटीक प्रयोग किया है । इससे नायिका के अंतर्बाह्य व्यक्तित्व की धूम्र-रेखाएं भलीभांति व्यंजित हो जाती हैं । प्रसंगानुकूल शब्द-प्रयोग कवि की महती विशेषता है जिससे अपेक्षित अर्थबोध के साथ भावाभिव्यक्ति हो जाती है । इस शब्द-प्रयोग द्वारा अनुरूप वातावरण की सृष्टि हुई है ।

(६) विषपान :

हर्षोल्लास, अंग-भंगिमा, प्रभंजन, परित्राण, ~~नि~~ निखिल, नवशोणित, प्रतियाम, प्रकर्ष, पुलकित, रज्जु, परिकर, भूकम्पन, उपालंभ, मंदराचल, उत्पीड़न, महोदधि, कालकूट, अहंमन्यता, मुंडमालिनी, पीतवर्ण, ~~ल~~ नतमस्तक, आशुतोष, अभीष्ट, मकरंद, ओष्ठ, निराधार, अधिनायक इत्यादि ।

शब्द-चित्र के साथ-साथ वातावरण को प्रभावी रूप में प्रस्तुत करने में कवि ने तत्सम पदावली का प्रयोग किया है । एक उदाहरण यहाँ दृष्टव्य है -

'उठा लिया शिवशंकर ने विष,
इधर स्फुरित कुछ अधर हिले,
उधर कर बढ़ा, बढ़ा हलाहल,
और अधर से ओष्ठ मिले ।'[५०]

यहाँ तद्भव के साथ तत्सम पदावली के साहजिक सम्मिश्रण से अर्थबोध के अतिरिक्त चित्रोपमता उत्पन्न हुई है । तत्सम शब्द जैसे हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल गढ़ लिए गये हैं ।

(१०) चित्रा :

चित्रा में विषय वैविध्य होते हुए भी अधिकांशत: प्रणय के गीतों की भरमार है । श्रृंगार परक इन गीतों में तत्सम शब्दावली का प्रयोग अधिक हुआ है । इसका यह अर्थ नहीं कि अन्य विषयों से सम्बंधित रचनाओं में तत्सम शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ है । सर्वप्रथम कतिपय तत्सम शब्दों को प्रस्तुत करने के पश्चात् प्रणयगीत की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाएंगी ।

शब्दावली :

'निर्झर, दुर्वह, ~~स्वप्न-~~ स्वप्निल-कामना, निशिवासर, पीयूष-वर्षिणी,

शुभ्र हिम मंडित, सुरभि-मधु-पूरित, अधिकृत, विश्व-आतप, बहिर्कुसुमित, चिर-परिचिता, अलि-दल, अचल-प्रीति-प्रतीति, जीवन-सांध्य, वर्तिका, शरदेन्दु, तापमोचन, संपुटित, पिपासित, संगोपन, अवगुंठन, नित्य-उपेक्षित, विस्मृति-मकरन्द,उर्वरा, आत्म-प्रलय, आवास, अश्रुप्रपात, लवणा-सिंधु, मणि-रत्न-दीप, शोणित-मग्ना, समक्रम इत्यादि ।

(११)बासन्ती :

`बासन्ती` में प्रेम और प्रकृतिपरक भावों की वासन्ती सुषमा है । छायावादी शैली पर लिखे इन प्रणय गीतों में कवि तत्सम बहुला भाषा का प्रयोग करता है। भाव और भाषा का सामंजस्य इन गीतों की रोचकता बढ़ाता है । सर्वप्रथम कतिपय तत्सम शब्दों को उद्धृत करने के पश्चात प्रेम और प्रकृति के पृथक उदाहरण प्रस्तुत किये जायेंगे ।

शब्दावली :

`स्नेहालिंगन, प्रणयकुहुक, प्राणोन्मादक, नव-स्पंदन, वासंती-उषा, कनक-कुंदन, मुक्त-जीवन-प्रवाह, मृणाल, मुक्तामाल, वीतराग, शशांक, चिर-मौन, चिर-मौन, मतिविभ्रम, करुणाकांत, नितांत, निमिष, आनंद-मरंद, विदग्ध, अधरपुट अंगराग, रजतरश्मियां, मृगशावक, स्वर्ण-सरित, मदिरप्रहर, नील नीरद, वातास, सुरभिमधु, ममाहित,ज्योतित, कृशांगता, अर्ध-विनत, मंजूषा, विक्षिप्त इत्यादि ।

उदाहरण - `वह निमिषा-मात्र का शुभ दर्शन,
देगा मधु मुझको आजीवन,
अपनी स्वच्छंद मंद गति के
आनंद-मरंद वितर जाना ।`५१

यहाँ स्वच्छंद,मंद, आनंद-मरंद जैसे सानुनासिक तत्सम शब्दों के प्रयोग से निष्पन्न विशिष्ट नाद-ध्वनि मन को आकर्षित करती है ।`वितर जाना` शब्द-प्रयोग में तत्सम शब्द का हिन्दीकिरण दृष्टिगत होता है जो अ भावकार्य है ।

वासन्ती-सुषमायुक्त प्रकृति चित्रण में प्रयुक्त तत्सम शब्दावली का उदाहरण इस प्रकार है -

'खुलकर खिलो पद्म ।
शत-शत खिलें रूप के दल समुज्ज्वल,
मधु गंध से हों सुगंधित दिशा पल,
पाषाण निर्झर बने हों अचल चल,
उर-उर जगे कामना एक मंगल ।
सुरभित बने सद्म ।
खुलकर खिलो पद्म ।' ५२

पद्म के निर्बन्ध एवं निर्बाध प्रस्फुटन से दिग्दिगन्त सुरभित होने उपरान्त कवि के मन में आनंद छा जाता है । तत्सम शब्दावली के उचित प्रयोग से इसे व्यंजित किया गया है ।

तत्सम शब्दावली से सम्बंधित उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अत्यन्त साहजिकता से कवि ने तत्सम शब्दावली का सफल प्रयोग किया है। प्रसंगानुकूल भावों व विचारों की अभिव्यक्ति में इन शब्दों ने भाषा को गौरव प्रदान किया है । इससे भाषा की प्रेषणीय शक्ति में वृद्धि हुई है । तत्सम शब्दों को तद्भव शब्दों के साथ ऐसा मिलाते हुए प्रयुक्त किया गया है कि जिससे भाषा क्लिष्ट नहीं हो पायी । वह प्रायः सर्वत्र सारल्य एवं सादगीयुक्त बनी रही है ।

तद्भव :

किसी भी भाषा में तद्भव शब्द जन-साधारण के सहज प्रयोग के कारण उसे स्वाभाविक बनाते हैं । अतः ये भाषा के प्राण कहे जा सकते हैं क्योंकि इसमें भाषा की प्रकृति के अनुकूल शब्दों के ढलान की प्रवृत्ति सविशेष होती है । प्रयत्न

लाघव और मुख-सुख के कारण जन-साधारण संस्कृत की तत्सम शब्दावली में आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर उन शब्दों का उपयोग करता रहता है। इस तरह परिवर्तित शब्द-रूप ही तद्भव शब्द कहलाते हैं। ये जन-समाज के जीवन-व्यापारों एवं गतिविधियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। तदर्थ जनवादी कवि की भाषा में तद्भव शब्दों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में होता है। यद्यपि जनभाषा में तद्भव के साथ-साथ देशज शब्दों का भी प्रयोग होता रहता है, तथापि ऐसे शब्द विशेष कर ग्रामीण सभ्यता व संस्कृति से विशेष सम्बद्ध रहते हैं। साहजिक रूप से उच्चरित होनेवाले तद्भव शब्दों के प्रयोग से भाषा में सरलता एवं स्वाभाविकता आती है। द्विवेदी जी ने इनका यथोचित प्रयोग करते हुए अपनी काव्यभाषा को एक और कृत्रिमता के बोझ से मुक्त किया है, तो दूसरी ओर जन-सामान्य की भाषा के रूप में अपने भावों व विचारों को अत्यन्त सरलता से संप्रेषित करने का यत्न किया है। इससे भाषा में गत्यात्मकता आई है। वैसे तद्भव शब्दों का प्रयोग प्राय: सर्वत्र मिलता है, फिर भी कतिपय विशिष्ट प्रसंगों में इसका प्राचुर्य दृष्टिगत होता है। जन-साधारण से सम्बद्ध विषयों या प्रसंगों में तद्भव बहुला भाषा का प्रयोग प्राय: अधिक मिलता है। जन-जागरण का कवि जागरण से सम्बद्ध प्रसंगों में जन-जीवन को प्रबुद्ध करने के अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए ऐसी भाषा का प्रयोग अधिकतर करता है। प्राय: प्रत्येक काव्यग्रंथ से कतिपय तद्भव शब्द एवं प्रसंगोचित काव्य-पंक्तियों को उद्धृत किया जा रहा है।

(१) <u>भैरवी :</u>

'मग, खंडहर, उसास, पत्थर, नंगा, भिखमंगा, आस, प्यास, भूख, घर, हिन्दुस्तान, नित, गांव, दुपहर, ओठों, पनघट, लाज, सोना, बहूरानी, मुंह, सेगांव, दीवाली, तपसी, आंतें, नींद, लब, पत्तों, केहरि-कटि, कंकाल इत्यादि।

'भैरवी' में खादीगीत, प्रेम के पागल पुजारी दाँडीयात्रा तरुण, मधुर तकाजा

हरिजनों की मंदिर-प्रवेश के लिए प्रार्थना, त्रिपुरी कांग्रेस, आजरुद्ध है मेरी वाणी, सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी`, आदि जन-जागरण से सम्बद्ध प्रसंगों को लेकर लिखी रचनाओं में तद्भव बहुला भाषा का प्रयोग अधिक मिलता है । उदाहरणार्थ निम्नांकित पंक्तियों को प्रस्तुत किया जा सकता है -

`खादी में कितने ही नंगों
भिखमंगों की है आस छिपी,
कितनों की इसमें भूख छिपी
कितनों की इसमें प्यास छिपी ।`[५३]

और- `रहे रूठी राधिका मत रुको
मत उसको मनाओ,
देखती अपलक तुम्हें जो
लाज तुम उसकी बचाओ ।
द्रौपदी नंगी उघारी,
नयन से जलधार जारी ।`[५४]

इन पंक्तियों में प्रयुक्त तद्भव शब्दों से साहजिक रूप से भावाभिव्यक्ति हुई है । साथ ही जन-चेतना को प्रबुद्ध करने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए जनता को सीधी चोट पहुंचाई गई है । ऐसे अन्य एकाधिक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं ।

(२) प्रभाती :

`हास, बीन, जागरण, साख, लाख, रात, अजान, दूध, मन्द, जोति, अनूप, पीर, उठान, कंधा, धुन, मीत, रूखे, आज, आंसू, आम, उजियाली, बांकुरे, सित, फुटिया, आंगन, अलग, अधमरे, गूढ़, सलोनी, फाग, बलिहारी आदि ।

`प्रभाती` में `उमंग, गांधी, सेवाग्राम, उन्हें प्रणाम, प्रभात फेरी, प्रेमचंद के

प्रति, अखंडभारत, गांधी-तीर्थ या भंगीबस्ती, गांधी मन्दिर, जवाहर आदि विभिन्न शीर्षकों में लिखी कविताओं में तद्भव बहुला भाषा का प्रयोग अधिक मिलता है। यहाँ भी अधिकांशत: जनजागरण से सम्बद्ध विषय दृष्टिगत होते हैं। उदाहरणार्थ निम्नांकित पंक्तियों को प्रस्तुत किया जा सकता है -

'प्रण में मरने की जगा साख,
रण में मरकर मैं बनूँ राख,
उठ पड़ें राखसे लाख-लाख।[५५]

और- 'है तरल तिरंगा लहराता,
चर्खे का उठने लगा राग।
उठ रही रामधुन की हिलोर
फिर लगी सुलगने मुक्ति-आग।'[५६]

उक्त दोनों उद्धरणों में प्रयुक्त तद्भव शब्दों के कारण सादगी एवं सहजता से परिपूर्ण भावाभिव्यक्ति हुई है। प्रथम उद्धरण में चेतना को प्रबुद्ध करते हुए कर्तव्य-कर्म की कामना व्यक्त हुई है तो द्वितीय में प्रबुद्ध चेतना के दर्शन होते हैं। भाव को व्यक्त करने के लिए कवि को कोई उपमान ढूंढने क नहीं जाना पडता। भावों का साहजिक प्रवाह उक्त तद्भव शब्दों के उचित प्रयोग से संभव हो सका है। ऐसे अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

(३) पूजागीत :

'बहाओ, सुनहले, खंडहर, हठीले, सुहाता, तिरंगा, बिछुडों को, बड़भागी, लेखनी, बिखरी, गरजना, पलकों, अलख, इत्यादि।

'पूजागीत' में 'लौटो आज प्रवासी, ओ तपस्वी, जाग! सोये देश,अब जाओगे किस उषा में, ओ जवानी! जाग!, डिग न रे मन, सुन सकोगे क्या कभी मेरी व्यथा की रागिनी ?, आज युद्ध की बेला, तुम जाओ, तुम्हें बधाई है ; नवयुग की शंख-ध्वनि पथ पर, फिर भी हो न निराश राही, एक स्वर गाता रहा हूँ आदि

जागरण से सम्बद्ध प्रसंगों में तद्भव शब्दों का प्रचुर प्रयोग मिलता है। उदाहरणार्थ निम्नांकित पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं -

'मैं अभागिनी भी बनूँगी
क्या कभी बड़भागिनी?
तुम सभी मिलकर चलोगे,
युगों के बन्धन दलोगे
फिर नहीं झनझन बजेगी
लौह की वह नागिनी।
सुन सकोगे क्या कभी
मेरी व्यथा की रागिनी ?'[५७]

और- 'बापू के कुछ मस्तानों ने
सत्ता की नींव हिलाई है।
तुम जाओ तुम्हें बधाई है।'[५८]

प्रथम उद्धरण में अभागिनी, बड़भागिनी, नागिनी, रागिनी, झनझन आदि तद्भव शब्दों के प्रयोग से एक विशेष व्यथा व्यंजित हुई है जिसे दूर करने के लिए ऐक्य की आवश्यकता को अनिवार्य समझा गया है। यहाँ दृष्टव्य है कि ऐक्य के लिए कवि ने तत्सम शब्द का प्रयोग करने की अपेक्षा तद्भव शब्द का ही प्रयोग किया है जो अन्य तद्भव शब्दों के प्रयोग में यथोचित जान पड़ता है। तत्सम शब्दावली का प्रयोग करने की आदत रखनेवाला कवि यहाँ बड़ी सजगता के साथ तद्भव शब्द का प्रयोग करता दृष्टिगत होता है। प्रसंगानुकूल एवं वातावरण के अनुरूप शब्द प्रयोग करना कवि की निजी विशेषता है जिससे भाषा में साहजिकता का निर्माण होता है। द्वितीय उद्धरण में प्राय: यही विशेषता दृष्टिगत होती है। इस प्रकार के अन्य अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

(४) युगाधार :

'पौधा, मुट्ठी, वसुदा, बिजली, बैलों में, चौपाल, साग-पात, दूध, मिट्टी, जटिल, गोधूली, बंकिम, अनजान, धान, बुड्ढा, सलौने, लंगोटी, सड़ग, पखारना, पैदल, निखरती इत्यादि ।

'युगाधार' में 'गांधी, हलधर से, मजदूर, ओ तरुण, ओ नौजवान, प्रयाण-गीत, सत्याग्रही, जनजागरण, बेतवा का सत्याग्रह, विश्राम, कैसी देरी ?, आत्मबोध, आदि शीर्षक कविताओं में जो अधिकांशत: जन-जागरण से सम्बद्ध विषय हैं, तद्भव बहुला भाषा का प्रयोग दृष्टिगत होता है । उदाहरणार्थ निम्नांकित उद्धरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं -

'हिन्दुस्तान बसा है तुममें
क्या तुम हो इससे अनजान ?
जब तक तुम न जगोगे, तब तक
नहीं जगेगा हिन्दुस्तान ।
जगा रहा युग, जगा रहा जग
जागो है सोये भाई,
जगो किसानो आज तुम्हारे
जगने की बेला आई ।' [५६]

और- 'घूमा करती नंगी दुनिया
मिलता न अन्न भूखों मरती,
मजदूर । भुजायें जो तेरी
मिट्टी से नहीं युद्ध करतीं ।' [६०]

उक्त दोनों उद्धरणों में किसान एवं मजदूर की चेतना को उजागर करने का

प्रयास हुआ है । इस प्रयास में तद्भव या देशज शब्दावली का प्रयोग अभीष्ट हो सकता है । तत्सम शब्दावली का प्रयोग अनुचित एवं निरर्थक होता । तदर्थ कवि इस विवेक का पालन करता हुआ यहाँ तद्भव शब्दों का प्रयोग करना दृष्टिगत होता है । इन्हीं प्रसंगों में कवि के द्वारा प्रयुक्त देशज शब्दावली के उदाहरण यथास्थान प्रस्तुत किये जायेंगे । राष्ट्र की प्रगति के मूलाधार इन कृषकों व मजदूरों तक अपनी बात सरलता से संप्रेषित करने के लिए इसी प्रकार की शब्दावली का प्रयोग आवश्यक होता है । भावों एवं विचारों की सहज अभिव्यक्ति संप्रेषणीयता में अभिवृद्धि करती हैं । उक्त पुस्तक में से ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

(५) चेतना :

'सपना, सदियों, सूत, सच, स्कुलाये, जगती, अगवानी, शीश, दुकूल, मसान, बरसाओ, बलिवेदी, सुहाग, अकूत इत्यादि ।

'चेतना' में 'तिरंग ध्वज, ऋ अर्ध-नग्न, तरुणाई का तकाजा, यह स्वतंत्रता की अरुणा उषा, आज राष्ट्र के कण-कण को गांधी की मूर्ति करेंगे, हम, कैसा बसन्त कैसी होली ? आदि शीर्षक कविताओं में, जिनमें स्वतंत्रता प्राप्ति एवं स्वातंत्र्योत्तरकालीन प्रसंगों को चित्रित किया गया है, तद्भव शब्दों का अधिक प्रयोग दिखाई पड़ता है । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् के प्रसंगों में विशेषकर गांधी-निर्वाण से सम्बंधित प्रसंगों में तद्भव शब्द दृष्टिगत होते हैं । स्वतंत्रता-प्राप्ति पर जनता के आनन्द को व्यक्त करते हुए कहा गया है -

'जिनका श्रम है उनकी धरती
जिनका हल है उनकी धरती
इतने दिन बाद अभागों को
सौभाग्य चला है अपनाने ।'[६१]

गांधी-निर्वाण प्रसंग पर विषादयुक्त जन-समुदाय को धैर्य प्रदान करते हुए कवि कहते हैं -

'जिसके बल पर उठे, बढ़े हम,
हमने रण हुँकार किया।
जिसके बल पर जिये-मरे हम
सौ-सौ संकट पार किया।'[६२]

उक्त प्रथम उद्धरण में जनता के आनंद को जनता की ही भाषा में व्यक्त करने का प्रयास हुआ है जो प्रसंगोचित लग रहा है। द्वितीय उद्धरण में कवि के कामनायुक्त भाव व्यक्त हुए हैं किन्तु जन-समुदाय के लिए होने से यहाँ भी तद्भव शब्दावली का प्रयोग उचित जान पड़ता है। ऐसे अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

(६) मुक्तिगंधा :

तत्सम शब्दावली के प्रसंग में यह निर्दिष्ट किया ~~जा~~ गया है कि स्वातंत्र्योत्तर कालीन इस रचना में कवि तत्सम बहुला भाषा की प्रवृत्ति बदलकर तद्भव प्रधान भाषा का प्रयोग करने की प्रवृत्ति अपनाता है। अत: प्रस्तुत कृति में तद्भव शब्दों से युक्त अनेक रचनाएँ मिलती हैं। 'आवाहन', 'आत्मचिन्तन', 'जागते रहो', 'अभिवादन' तथा 'अक्षत चन्दन' जैसे सभी स्तम्भों में न्यूनाधिक मात्रा में तद्भव शब्दों के प्राचुर्यपूर्ण प्रयोग मिलते हैं। विस्तारभय से दो-एक उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं -

'सुख नहीं यह, नींद में सपने संजोना
दुख नहीं यह, शीश पर गुरु भार ढोना
शूल तुम जिसको समझते थे अभी तक
फूल में उसको बनाने आ रहा हूँ।
अब न गहरी नींद में तुम सो सकोगे,
गीत गाकर मैं जगाने आ रहा हूँ।'[६३]

और- 'घिर रहीं आँधियाँ दसों दिशा से
इसे बुझाने को,
चल रहा प्रभंजन जोर शोर से
इसे मिटाने को,

बन लोहे की चट्टान खड़े हो
इसे बचाने को ।`[६४]

स्वातंत्र्योत्तर युग में भी कवि जन-समुदाय को जागृत रखने के लिए सावधान करते हुए तद्भव शब्दावली युक्त भाषा का ही प्रयोग करते हैं। इतना ही नहीं शासन गत विकृतियों एवं भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए शासकों को आत्मचिन्तन का बोध देते हुए उनकी प्रसिद्ध रचनाओं-`झण्डे फहरानेवालो` तथा `दिल्ली दरबार` में भी वे तद्भव शब्दावली के प्रयोग का आग्रह रखते हैं। इसके अतिरिक्त `स्वतंत्रता सेनानी`, `ओ पत्थर की प्रतिमा पिघलो`, `इतना आज अमर कर पाओ`, `अभियान गीत`, सीमान्त के पहरुए, `नयी फसलें,` `अशोक के प्रति`, `सीमान्त गांधी के प्रति`, `यह कैसा जनतंत्र ?` आदि रचनाओं में तद्भव शब्दावली का सफल प्रयोग परिलक्षित किया जा सकता है।

उपर्युक्त सभी रचनाओं के अनुशीलन से यह तथ्य प्रकाश में आता है कि द्विवेदी जी अधिकांशत: जन-जागरण से सम्बद्ध विविध प्रसंगों व विषयों पर लिखित रचनाओं में तद्भव-प्रधान भाषा का प्रयोग करने का आग्रह रखते हैं। भाषा में साहजिकता, सरलता एवं प्रेषणीयता के गुण ऐसे प्रसंगों में अधिक देखने को मिलते हैं।

`वासवदत्ता`, `कुणाल` तथा `विषपान` जैसी सांस्कृतिक रचनाओं में अधिकांशत: तत्सम शब्दावली पूर्ण भाषा- शैली का प्रयोग दृष्टिगत होता है किन्तु कुछ प्रसंगों में तद्भव शब्दों से युक्त भाषा-प्रयोग परिलक्षित किया जा सकता है। हाँ, ऐसे प्रयोग इनमें बहुत कम हैं। प्रत्येक पुस्तक से एक-एक उदाहरण प्रस्तुत हैं -

(७) वासवदत्ता :

इस कृति के अंतर्गत `एक बूँद` नामक प्रत्याख्यान में बूँद के निस्वार्थ आत्म-समर्पण से विचलित गुरु-गंभीर जलदों ने जब मुसलाधार वर्षा की तब उसके परिणामस्वरूप

उत्पन्न हरियाली के संदर्भ में कहा गया है -

`झर झर झरा नीर
पावस आया गंभीर
हरे हुए खेत- खलिहान ।
उगे वहाँ अन्न धान
पशुओं ने तृण पाया ।`[६५]

कवि यहाँ प्रारंभ में तद्भव शब्दों का प्रयोग करके पुनः `अन्न,` `तृण` जैसे तत्सम शब्दों का प्रयोग करने लगते हैं । यद्यपि इससे अर्थबोध में कोई अवरोध उत्पन्न नहीं होता क्योंकि ये शब्द अत्यधिक प्रचलित हैं, तथापि इससे कवि की प्रवृत्ति पर अवश्य प्रकाश पड़ता है ।

(८) कुणाल :

कुणाल खण्डकाव्य के अंतर्गत प्रणय-निवेदन सर्ग में कामांध तिष्यरक्षिता कुणाल के सम्मुख अपना स्नेहाकर्षण व्यक्त करते हुए कहती है -

" है एक भार मेरे उर में वह
हलका करने आयी हूँ
`कुछ मन की सुनने आयी हूँ
कुछ मन की कहने आयी हूँ ।"[६६]

(९) विषपान :

अमृत की कामना से समुद्र मंथन करनेवाले दैत्यों की अहंमन्यता के वर्णन प्रसंग में कवि कहता है -

`हम हैं इन्द्र कंपा देंगे हम
त्रिभुवन का भी सिंहासन
हम हैं बलि हम दैत्यराज
मथ डालेंगे चौदहों भुवन ।`[६७]

इन पंक्तियों में कंपा डालेंगे, मथ डालेंगे, चौदहों भुवन आदि तद्भव शब्दों के साथ-साथ त्रिभुवन, सिंहासन, इन्द्र जैसे तत्सम शब्दों का भी प्रयोग हुआ है । यहाँ तत्सम एवं तद्भव शब्दों का मिला-जुला प्रयोग शब्द-सामंजस्य को प्रस्तुत करता है। सांस्कृतिक ग्रंथों की भाषा का अनुशीलन करने पर यह प्रतीत होता है कि इसमें दोनों प्रकार के शब्दों का सामंजस्यपूर्ण प्रयोग हुआ है, तथापि तत्सम पदावली का अधिक प्रयोग है । दूसरे शब्दों में यह कहना समीचीन होगा कि सांस्कृतिक रचनाओं की भाषा तत्सम बहुला है और यही कवि की प्रवृत्ति है । यह ध्यातव्य है कि तत्सम-प्रधान होते हुए भी भाषा में क्लिष्टता या दुरूहता नहीं है । उसमें सहजता एवं सरलता है । कवि की यह भाषागत विशेषता प्रायः सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है ।

द्विवेदी जी लिखित शृंगार प्रधान `चित्रा` और `वासन्ती` जैसी दो रचनाएँ भी तत्सम शब्दावली प्रधान हैं । तदर्थ केवल तद्भव शब्द वाले छंद बहुत कम मिलते हैं। सांस्कृतिक रचनाओं की तरह इन ग्रंथों में भी तत्सम एवं तद्भव शब्दों के सामंजस्यपूर्ण प्रयोग मिलते हैं । फिर भी `चित्रा` में `ग्राम-वधू` शीर्षक रचना में तद्भव प्रधान भाषा का उदाहरण मिलता है जो इस तरह है -

`पहने वह नीली-नीली धोती
मुँह-हाथ-पाँव अधखुले हुए,
खिलती ज्यों आधी भरी नहर
तरु-पत्र जड़ों हों लदे हुए,
खेतों खलिहानों में इसने
ही क्या अमृत के कण सींचे ?
वह महुआ बिनती तरु नीचे ।`[६८]

ग्राम-बधू का शब्द-चित्र अंकित करते हुए कवि तद्भव पदावली का प्रयोग बड़ी सफलता के साथ करते हैं। विषयानुरूप भाषा का प्रयोग कवि के कथ्य में प्रेषणीयता उत्पन्न करता है। विभिन्न बिंबों के द्वारा ग्रामीण वातावरण उत्पन्न करने में कवि सफल हुए हैं। किन्तु ग्रामीण वातावरणपूर्ण शब्दावली में'तरुपत्र' जैसा तत्सम शब्द अखरता है। इसके स्थान पर तद्भव शब्द का प्रयोग उचित होता।

देशज शब्द :

देशज शब्द प्रदेश-विशेष के आंचलिक परिवेश की देन होते हैं। ये शब्द तत्प्रदेश में निवास करनेवाले व्यक्तियों के द्वारा आवश्यकतानुसार गढ़ लिये जाते हैं। तदर्थ उनकी व्युत्पत्ति का सूत्र मिलना प्राय: असंभव रहता है। सामान्य जनता उन्हें दैनंदिन व्यवहार में उपयोग में लाती है। बोलचाल की भाषा या बोली में इन शब्दों का अधिक प्रयोग होता है किन्तु वह बोली या भाषा जैसे जैसे साहित्यिक भाषा का स्वरूप धारण करती है, इन शब्दों का प्रमाण कम होता जाता है। कलावादी कवि प्राय: इन शब्दों का प्रयोग नहीं करता है। वह तो तत्सम शब्दावली प्रचुर आलंकारिक भाषा का प्रयोग करता है। किन्तु जनवादी कवि के लिए उक्त शब्दों का प्रयोग अनिवार्य बन जाता है। द्विवेदी जी पांडित्य-प्रदर्शन एवं चमत्कार-सर्जन के व्यामोह को छोड़कर देशज शब्दों का सरल भावाभिव्यक्ति एवं प्रेषणीयता की वृद्धि के लिए प्रयोग करते हैं। यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि तत्सम शब्दावली का, भाषा की प्रकृति के अनुकूल प्रयोग करने की उनकी विशेष प्रवृत्ति रही है। अत: देशज शब्दों का वे सर्वत्र प्रयोग नहीं करते हैं। ग्रामीण जन-समाज की दयनीय स्थिति का चित्रण करते समय या उस समाज की चेतना उजागर करते समय कवि देशज शब्दों का अधिक उपयोग करते हैं। जिस समाज में आमूल क्रान्ति करनी हो, उस समाज को उसकी भाषा में ही उद्बोधन करने से एक ओर आत्मीयता का वातावरण निर्मित होता है, तो दूसरी ओर कवि का कथ्य स्वाभाविकता, एवं सरलता से संप्रेषित हो जाता है। इस तरह कवि के लक्ष्य की पूर्ति अविलंब हो सकती है। द्विवेदी जी ने भी वही किया है। उनकी भाषा में जो सरलता, सहजिकता एवं कलागत सादगी परिलक्षित होती है,

उसका प्रमुख कारण उद्देश्य की स्पष्टता तथा उसकी पूर्ति का सजग प्रयास ही है। देशज शब्दों का प्रयोग, कवि उक्त परिसीमा के बाहर निकलकर अन्यत्र भी करता है किन्तु ऐसे प्रसंग नगण्य-से हैं। अतः ग्रामीण जन-समाज से सम्बद्ध प्रसंगों को केन्द्र में रखकर कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

भैरवी :

'भैरवी' के अंतर्गत 'गांवों में', 'किसान', 'आजादी के फूलों पर', आदि शीर्षकों में लिखित रचनाओं में देशज शब्दों का सविशेष प्रयोग हुआ दृष्टिगत होता है।

यथा- 'पुरईं पालों, खपरैलों में
रहिमा रमुआ के नावों में
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ
वह बसा हमारे गांवों में
+ + +
उन रात रात भर, दिन-दिनभर
खेतों में चलते दौलों में,
दुपहर की चना-चबेनी में
बिरहा के सूखे बोलों में।' [66]

सच्चे भारत का दर्शन ग्रामीण जन-जीवन में ही हो सकता है क्योंकि भारत कृषि-प्रधान देश रहा है। तदर्थ कवि ने गाँव के अंतरंग जीवन को प्रस्तुत करने के उद्देश्य से देशज शब्दों का प्रयोग उक्त पंक्तियों में सविशेष किया है। इनके प्रयोग से अभिव्यक्ति में स्वाभाविकता का निर्माण हुआ है। प्रसंगोचित शब्द-चयन द्विवेदी जी की भाषा की महती विशेषता है। भावों की सफल अभिव्यक्ति का रहस्य संभवतः यही है।

'आजादी के फूलों पर' काव्य में भी ग्रामीण जनता को जागृत करते हुए कवि कहते हैं -

खुरपी
-~~कुर्सी~~ और कुदाली वाले,
फडुआ और फरसेवाले ।
महाकाल से रात-दिवस
दो टुकड़ों पर लड़नेवाले ।
फूंक शंख बाजे रणभेरी
जननी की जय जय बोले ।
चले करोड़ों की सेना
डगमग डगमग धरणी डोले ।[७०]

यहाँ अंतिम पंक्ति में शब्द-चयन एक विशिष्ट नाद-सौंदर्य उत्पन्न करता है । देशज शब्दों के यथोचित अनुप्रासयुक्त प्रयोग से बिंबात्मक अनुभूति होती है जिससे अर्थबोध में साहजिकता आ गई है ।

युगाधार :

`युगाधार` के अंतर्गत `सेवाग्राम की आत्मकथा` में ग्रामीण जन-जीवन के साथ स्थायी निवास के लिए आगमन करते समय बापू का स्वागत करते हुए ग्रामीण वातावरण का जो चित्र अंकित किया गया है, उसमें देशज शब्दों का भरपूर प्रयोग परिलक्षित होता है -

`आओ तुम पुरई ग्वालों में
आओ छप्पर खपरैलों में,
आओ फूसों की कुटियों में
कुम्हड़े कद्दू की बेलों में ।
आओ कच्ची दीवारों से
निर्मित घर की चौपालों में
रहते हैं दीन किसान जहाँ
जामुन महुआ के थालों में ।[७१]

इन पंक्तियों में अधिकाधिक देशज शब्दों का प्रयोग हुआ है जिससे ग्रामीण वातावरण का भलीभाँति निर्माण हुआ है । प्राय: एक एक शब्द बिंब की सृष्टि करता है । तदर्थ अर्थ संकेत अपने आप हो जाता है । तदर्थ-अर्थ शब्दों के सटीक प्रयोग से कवि की विपुल शब्द-संपदा का अनुभव तो होता ही है । साथ ही अभिव्यक्ति की क्षमता का भी परिचय मिल जाता है । देशज शब्दों की लड़ी में `निर्मित` शब्द का प्रयोग अखरता है । इसके स्थान पर किसी देशज शब्द का प्रयोग हुआ होता तो अधिक अच्छा होता । इससे तो शूद्रों की बिरादरी में किसी ब्राह्मण को जबर्दस्ती स्थान दे दिया गया हो ऐसा अनुभव होता है । जो हो, कुल मिलाकर यहाँ देशज शब्दों का सफल प्रयोग हुआ है जो विशिष्ट सौंदर्य का निर्माण करता है । `हलधर से `तथा `मजदूर` जैसी रचनाओं में भी ऐसे उदाहरण देखे जा सकते हैं ।

<u>मुक्तिगंधा :</u>

`मुक्तिगंधा` के अंतर्गत `फण्डे फहरानेवालो` शीर्षक काव्य में उल्लिखित गांवों के शासकों की स्वार्थी नीति का सांकेतिक चित्र प्रस्तुत करते हुए कवि लिखते हैं -

`पटवारी तो पटवारी थे, पर यह प्रधान
जो बना गाँव का खाऊ बड़ा लुटेरा है ।
अपनी जमीन औ` जोत बनाये रखने को
बिक चुका बहुत कुछ अपना लुटिया डेरा है ।
+ + +
पर कब तुम पुरसा हाल बने दु:ख दर्दों के,
तुमको तो भाता रहा ख्याल खुशहालों का ।``७२

गांवों के संरक्षक भक्षक बन जायँ तो सहज ही आक्रोश उत्पन्न होगा । कवि ऐसे

आक्रोश को कतिपय देशज शब्दों के द्वारा व्यक्त करते हैं । प्रसंगोचित देशज शब्दों का प्रयोग सौंदर्यवृद्धि करता है और तदनुसार अर्थ-संकेत भी करता है ।

चित्रा :

`चित्रा` के अंतर्गत `ग्रामकन्या` शीर्षक कविता में भी देशज शब्दों से युक्त ग्रामीण कन्या का शब्द-चित्र मिलता है जो इस प्रकार है -

`रांगे की काली बिछियाँ
हैं पांवों में,
हाथों में चूड़ी पहीं ;
लाख की पीली ,
दो कांसे के हैं कड़े
पड़े बाजू में,
चूनर की ढिग की कोर
हुघर है नीली ।`[७३]

ग्रामीण कन्या के अंग-प्रत्यंगों में धारण किये विभिन्न श्रृंगार साधनों का वर्णन देशज शब्दावली में करने पर साहजिकता निष्पन्न हुई है । साथ ही आवश्यक बिंबों की सृष्टि का निर्माण भी हुआ है जिससे ग्राम-कन्या का एक विशिष्ट शब्द-चित्र प्रस्तुत हो सका है । सारांश यह कि देशज शब्दों का प्रयोग कवि ने विशिष्ट प्रसंगों में विशेषकर ग्राम-जीवन से सम्बद्ध प्रसंगों में किया है जो प्रसंगोचित है । ग्राम-जीवन में अत्यधिक प्रचलित देशज शब्दों का अतीव साहजिकता के साथ प्रयोग हुआ है । इन शब्दों के प्रयोग से काव्य में अभीप्सित वातावरण का निर्माण होता है जिससे कवि के उद्देश्य की पूर्ति हो सकी है । भावाभिव्यंजना की कला में ये सहायक सिद्ध हुए हैं ।

विदेशी शब्द :

द्विवेदी जी की भाषा में अरबी, फारसी, अंग्रेजी आदि इतर भाषाओं के

शब्दों का भी यथास्थान प्रयोग दृष्टिगत होता है । जो विदेशी शब्द जन-जीवन में अधिक प्रचलित हो गये हैं और जिनका प्रयोग अधिकतर होता रहता है , उन विदेशी शब्दों को कवि ने अपनी रचनाओं में प्रयुक्त किया है । कहीं उन शब्दों को तत्सम रूप में प्रयुक्त किया गया है तो कहीं उन्हें हिंदी की प्रकृति में ढालकर उनका हिंदीकरण करते हुए प्रयोग किया गया है । काव्य में उनका संयोजन इस प्रकार हुआ है कि वे विदेशी-से प्रतीत नहीं होते । कतिपय उदाहरण प्रस्तुत है -

भैरवी- 'ये मेहमान, ये मेजमान,
साकी, सुराही का सामान,
ये जलसा महफिल, समाँ, तान,
वे करते हैं किस पर गुमान ?
वह तेरी दौलत पर किसान ।
वह तेरी मेहनत पर किसान ।
वह तेरी रहमत पर किसान ।
वह तेरी ताकत पर किसान ।'[७४]

इन पंक्तियों में 'मेहमान, मेजमान, साकी, सुराही, जलसा, महफिल,समाँ, गुमान, दौलत, मेहनत, रहमत, ताकत आदि शब्द विदेशी हैं । ये अरबी-फारसी भाषा के शब्द हैं । ये अपने तत्सम रूप में प्रयुक्त हुए हैं , तथापि इतने स्वाभाविक रूप से इनका प्रयोग हुआ है कि इससे अर्थबोध में दुरुहता उत्पन्न नहीं हुई है । ये शब्द हिंदी भाषा में विशेषकर ग्रामीण जन-समाज में प्रसिद्ध हैं अतः इनका प्रयोग भावाभिव्यक्ति में बोझिल नहीं हुआ । भाषा में स्वाभाविकता म की सुरक्षा हुई है। इसी कविता में से अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

प्रभाती :

सत्याग्रही सेनानी जो अपनी लक्ष्य प्राप्ति के लिए सर्वाधिक सहनशील बनकर

आत्म-समर्पण भी कर देते हैं उन्हें प्रणाम करते हुए कवि कहते हैं -

जो फाँसी के तख्तों पर जाते हैं झूम,
जो हँसते हँसते शूली को लेते चूम,
दीवारों में चुन जाते हैं जो मासूम,
टेक न तजते पी जाते हैं विष का घूम ।'[७५]

यहाँ 'फाँसी', 'शूली', 'मासूम' जैसे शब्द तत्सम रूप में प्रयुक्त हुए हैं । परन्तु तख्तों पर, दीवारों में जैसे शब्द हिंदी के कारकों के साथ कुछ परिवर्तन सहित प्रयुक्त हुए हैं । ये सभी शब्द अत्यन्त प्रचलित हैं । वे इतने प्रचलित हैं कि उनके स्थान पर यदि हिंदी के पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया जाय तो वे इतनी सरलता एवं साहजिकता से भावाभिव्यंजना नहीं कर सकते । ये शब्द अंगूठी में नग की तरह ऐसे जड़ दिये गये हैं कि इनके स्थान पर दूसरे शब्दों का प्रयोग करने पर कविता का कलागत सौंदर्य ही नष्ट हो जाएगा । 'प्रभाती' में से 'अखंड-भारत', 'जवाहर' जैसी रचनाओं में से अन्य उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं ।

युगाधार :

'ओ नौजवान' शीर्षक कविता में कवि नौजवान को उनकी शक्ति की स्मृति दिलाते हुए कहते हैं -

'तू नई पौध अरमानों का
तू नया राग मस्तानों का,
तू नया रंग, तू नया ढंग
दीवानों का मर्दानों का
तू नया जोश, तू नया होश
अपनों का औं बेगानों का,
तू नया जमाना नई शान
ईमान नया ईमानों का ।'[७६]

इन पंक्तियों में `अरमानों का, मस्तानों का, दीवानों का, मर्दानों का, बेगानों का, ईमानों का आदि शब्दों का प्रयोग हिंदी की प्रकृति के अनुरूप इनका हिंदीकरण करते हुए किया गया है। `ईमान` और `शान` तत्सम रूप में प्रयुक्त हुए हैं। उक्त शब्दों में हिन्दीकरण की प्रवृत्ति में कवि ने विशेषकर शब्दों का बहुवचन करके उन्हें कारक के `का` चिन्ह से संयुक्त किया है। इससे जैसे ये हिंदी के शब्द हो गये हों ऐसा प्रतीत होता है। इनका साहजिक प्रयोग देखते बनता है। ऐसे अन्य उदाहरण `बेतवा का सत्याग्रह`, `सेवाग्राम की आत्मकथा`, `भ्रमण`, `हलधर से` `आत्मबोध` आदि रचनाओं में से उद्धृत किये जा सकते हैं।

चेतना :

`तुझे शपथ है` शीर्षक के अंतर्गत कवि नवयुवक को कर्तव्यमान कराते हुए कहते हैं -

`तुझे शपथ है आजादी की,
ओ जाँबाज जवाँ मेरे।
बुझा आग बरबादी की,
जो है तेरे घर को घेरे।
+ + +
तुझे शपथ है, बेगुनाह,
बेवाओं की चीत्कारों की।`77

इन पंक्तियों में भी उपर्युक्त प्रवृत्ति ही दृष्टिगत होती है। `आजादी की`, `बरबादी की`, बेवाओं की आदि शब्दों का हिन्दीकरण करके उन्हें अपनाया गया है। जाँबाज जवाँ, `शपथ` आदि अपने तत्सम रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इससे स्वाभाविक अर्थ-निष्पत्ति हो पाई है। ऐसे अन्य उदाहरण `राष्ट्र-ध्वजा`, `वज्रपात` आदि कविताओं से प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

मुक्तिगंधा :

`मुक्तक` शीर्षक के अंतर्गत कवि नवयुवक को कर्तव्यमान कराते हुए कहते हैं :-

`छायी क्यों अजब उदासी है ?
जिन्दगी बन गई दासी है ,
ताजगी नहीं गर खयालों में,
जिन्दगी तुम्हारी बासी है ।
खामोश न बैठो बन मुरदे,
आँधियाँ बनो तूफान बनो ।
दुनिया है बदल गई सारी,
तुम आज नये इन्सान बनो ।`[७८]

इन पंक्तियों में अजब, उदासी, जिन्दगी, ताजगी, गर खयालों में, बासी, खामोश, मुरदे, आँधियों, तूफान, दुनिया, इन्सान जैसे विदेशी शब्द प्राय: अपने तत्सम रूप में प्रयुक्त हुए हैं, तथापि भावाभिव्यक्ति बोझिल नहीं हो पाई है । भावागत सरलता एवं सहजता की प्राय: सुरक्षा हुई है । इससे कलागत सौंदर्य की अभिवृद्धि ही हुई है । इन शब्दों का प्रयोग इतना सहज हुआ है कि इनके स्थान पर अन्य पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करने पर भावाभिव्यक्ति में कृत्रिमता आ जाएगी, उसका सहज सौंदर्य नष्ट हो जाएगा । इस प्रकार के अन्य उदाहरण उनकी प्रसिद्ध रचनाओं `झण्डे फहरानेवालो`, `दिल्ली दरबार`, `अभियान गीत`, `जागते रहो`, `सीमान्त के पहरुए`, `सावधान ओ देशवासियो`, `नयी फसलें` इत्यादि में से उद्धृत किये जा सकते हैं ।

`वासवदत्ता` आदि सांस्कृतिक रचनाओं में कवि ने प्राय: विदेशी शब्दों का प्रयोग नहीं किया है । फिर भी अपवाद के रूप में कहीं ऐसा प्रयोग मिल जाता है जो निम्नांकित है -

`इसी समय-
आया परवाना दरबार का,
राणा सरकार का`[७९]

'चित्रा' और 'वासन्ती' जैसी श्रृंगार-प्रधान साहित्यिक रचनाओं में भी सांस्कृतिक रचनाओं की तरह विदेशी शब्दों का प्रयोग प्रायः नहीं हुआ है। कुल मिलाकर उपर्युक्त काव्य-कृतियों के अनुशीलन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि ने विदेशी शब्दों का प्रयोग अधिकतर जन-जागरण से सम्बद्ध रचनाओं में किया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि कवि ने इन विदेशी शब्दों को कहीं उनके तत्सम रूपों में प्रयुक्त किया है तो कहीं उनका हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप ढालकर तद्भव रूप में प्रयोग किया है। किन्तु यह स्पष्ट है कि विदेशी होने पर भी प्रयोग में लाने के पश्चात् वे केवल विदेशी ही नहीं रह पाये, सहज भावाभिव्यक्ति में सहायक सिद्ध हो गये हैं। हिन्दी भाषा की प्रकृति के साथ जैसे घुल-मिल गये हैं। भाषा को बोझिल बनाने की अपेक्षा उसे सहज, सरल और संवेद्य बनाने में सहायभूत हुए हैं।

अद्यावधि शब्द-योजना के संदर्भ में चतुर्विध शब्द-समूहों के विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि द्विवेदी जी की भाषा में विषयानुरूप शब्द योजना हुई है। सांस्कृतिक एवं साहित्यिक कृतियों में अधिकांशतः तत्सम बहुला भाषा का प्रयोग दृष्टिगत होता है। यद्यपि उनकी राष्ट्रीय कृतियों में भी विशिष्ट प्रसंगों में यही प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है, तथापि उनमें प्रायः तत्सम एवं तद्भव शब्दों से सम्मिश्रित भाषा-प्रयोग अधिक मिलता है। यह उल्लेखनीय है कि प्रायः तत्सम शब्दावली का प्रयोग करनेवाले कवियों की मनःस्थिति भाषा को अधिक आलंकारिक तथा विद्वद्भोग्य बनाने की रहती है, किन्तु द्विवेदी जी की मनःस्थिति इससे भिन्न है। वे तत्सम शब्दावली के प्रयोग में सदैव सावधान रहे हैं कि कहीं भाषा क्लिष्ट न बन जाय। भावाभिव्यक्ति में कृत्रिमता एवं दुर्बोधता न आ जाय। तदर्थ वे प्रायः प्रचलित तत्सम शब्दावली का प्रयोग करते रहे हैं। तीव्र भावानुभूति की सहज, सरल अभिव्यक्ति ही उनकी भाषा का प्रमुख लक्षण है क्योंकि वे जनता के कवि हैं और जनभाषा का प्रयोग करना उनका अभीष्ट है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, देशज एवं विदेशी शब्दों का प्रयोग भी भाषा को सहज, सरल एवं जन-समुदाय की चेतना को प्रबुद्ध करने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से ही हुआ है। तदर्थ उनकी भाषा में कहीं भी

क्लिष्टता एवं दुर्बोधता नहीं आ पाई है । ऐसा प्रतीत होता है कि जन-जागरण एवं राष्ट्र-निर्माण के निजी लक्ष्य की पूर्ति के लिए कवि ने अपने धारावाहिक भावों की संप्रेषणीयता को ही अधिक महत्व दिया है । तदर्थ भाषा की साज-सज्जा एवं आलंकारिक शब्द-संयोजना की ओर कवि का मन आकृष्ट नहीं हुआ । अपने पाठक के स्तर को ध्यान में रखते हुए उन्होंने उपर्युक्त चतुर्विध शब्द-समूहों के प्रयोग में सहज,सरल भावाभिव्यक्ति को ही महत्व दिया है ।

नादमूलक राष्ट्र :

भावाभिव्यक्ति की सहजता एवं सरलता की प्रक्रिया में सुचारुता तथा गत्यात्मकता लाने के लिए कवि ने नादमूलक शब्दों का भी प्रयोग किया है । इन शब्दों में कहीं गति है तो कहीं झमक, कहीं ओज है तो कहीं नादानुकृति । अपने तीव्रतम एवं जोशपूर्ण भावों व विचारों की साहजिक अभिव्यक्ति के लिए कवि ने आवश्यकतानुसार शब्दों की पुनरावृत्ति करके नाद-सौंदर्य की सृष्टि की है । कतिपय शब्द दृष्टव्य हैं -

भैरवी :

टूटे-फूटे, थर-थर, हड्डी-कड्डी, काली-काली, भोले-भाले, आन-बान, झम-झम, गुनगुन, सुध-बुध, चमचम, घनन-घनन, पग-पग, डगर-डगर, नस-नस इत्यादि ।

युगाधार :

डगमग, कोटि-कोटि, मगन-मगन, रिमिक-झिमिक, ढह-ढह, नन्हें-नन्हें, मचल-मचल, उछल-उछल, शत-शत, घुन-घुन, उथल-पुथल, तिल-तिल, दर-दर, जाति-जाति इत्यादि ।

प्रभाती :

लाख-लाख, धाम-धाम, ग्राम-ग्राम, अंग-अंग, आघात-प्रतिघात, जाति-पाँति, क्षण-क्षण, दिशि-दिशि इत्यादि ।

पूजागीत :

खनखनाती, झनझनाती, आदि ।

चेतना :

उठ-उठकर, झुक-झुक, तृण-तृण, थर-थर, जल-थल आदि ।

चित्रा :

झर-झर, कुल-कुल, मंद-मंद, सरल-सरल, निर्मल-निर्मल, शीतल-शीतल, कोमल-कोमल, उज्ज्वल-उज्ज्वल, हाट-बाट, लाल-लाल, चुन-चुन, युग-युग, छन-छन, रुमझुम, कण-कण, गृह-गृह, रह-रह आदि ।

वासन्ती :

छल,-छल, बार-बार, गल-गाल, तार-तार इत्यादि ।

वासवदत्ता :

टूक-टूक, लता-लता, अणु-अणु, बन-बन, झर-झर, इत्यादि ।

विषपान :

अजर-अमर, दीन-हीन, नया-नया, बम-बम, हर-हर, चरण-शरण आदि ।

कुणाल :

बन-ठन, रिमझिम, नटखट, चुपके-चुपके, रुनझुन, हलचल, पूजन-यजन, घूर-घूर, सुख-दुख, विभव-वैभव इत्यादि ।

उपर्युक्त शब्दों का आवश्यकतानुसार प्रयोग करके कवि ने अपनी काव्य-भाषा में किस प्रकार नाद-सौंदर्य की सृष्टि की है, यह निर्दिष्ट करने के लिए कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं -

(१) 'ये नूपुर की रुनझुन रुनझुन,
ये पायल की छमछम छम धुन,
ये गमक, मीड़, मीठी गुनगुन,
ये जन-समूह की गति सुनमुन ।'[८०]

(२) `हड्डी-हड्डी, पसली-पसली
निकली है जिनकी एक-एक`[८१]

(३)` खंड-खंड भूखंड, अंड ब्रह्मांड
पिंड नभ में डालें,
मेरे मृत्युंजय की टोली,
जब माँ की जय-जय बोलें।`[८२]

(४) `हथकड़ी हैं खनखनातीं,
बेड़ियाँ हैं झनझनातीं,`[८३]

(५)` उठ-उठ कर झुक-झुक जाता,
मेरी वीणा का कंपन।`[८४]

(६)` निर्झर झर-झर झरता रहता
अपनी अनंत धुन में विलीन,
खग-कुल कुल कुल कर कह जाता
अपनी सुख-दुख गाथा नवीन।`[८५]

(७)` अपने ही जैसा कर दो यह
मेरा मानस भी सरल-सरल,
कोमल-कोमल, निर्मल-निर्मल,
उज्ज्वल-उज्ज्वल, शीतल-शीतल।`[८६]

उपर्युक्त प्रथम उद्धरण में नूपुर और पायल की कर्णप्रिय संगीतमय ध्वनि का निर्देश करते हुए मधुर नाद निष्पन्न करने का प्रयास किया गया है। द्वितीय उद्धरण में दलितों की पीड़ा से निष्पन्न व्यथा की गहराई को स्पर्श करने का प्रयास है। `हड्डी-हड्डी, पसली-पसली` जैसे शब्दों की पुनरावृत्ति के द्वारा व्यथा को बलपूर्वक प्रकट करते हुए पाठक का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया गया है। तृतीय उद्धरण में खंड-खंड अंड-ब्रह्मांड जैसे शब्दों की अनुप्रासात्मक पुनरावृत्ति से एक विशेष प्रकार का नाद-सौंदर्य निष्पन्न हुआ है जो ओज प्रधान है। नवयुवकों की अतुलनीय शक्ति का परिचय अत्यन्त सरलता एवं साहजिकता से हो जाता है। `खनखनाती` और `झनझनाती` शब्दों में ओजमय नादानुकृति दृष्टिगत होती है। पंचम उद्धरण में राष्ट्र देवता बापू के

विराट व्यक्तित्व का शब्द चित्र प्रस्तुत करने में कवि की विवशता को व्यंजित करने का प्रयास है। 'उठ-उठकर, फुक-फुक जाने' का संकेत भावों के उतार-चढ़ाव का प्रदर्शन करता है। षष्ठ उद्धरण की प्रथम एवं तृतीय पंक्तियों में प्राय: एक ही शब्द की बारंबार पुनरावृत्ति करके विशिष्ट नाद-सौंदर्य की सृष्टि की गई है। 'फर-फर' और 'कुल-कुल' शब्दों ने गत्यात्मकता उत्पन्न कर दी है। अंतिम उद्धरण में यद्यपि शब्दों की पुनरावृत्ति अवश्य हुई है तथापि इसमें अनुप्रासात्मक शब्दों की अनावश्यक भरमार-सी हो गई है। इससे अपेक्षित नाद-सौंदर्य निष्पन्न नहीं हो पाया। यह पुनरावृत्ति पादपूर्ति मात्र प्रतीत होती है। लहरों के समान स्वयं को बनाने के मोह में कवि मानो इन विशेषणों का नाम -परिगणन कर रहा हो। फिर भी कुल मिलाकर कवि ने उपर्युक्त जिन नादमूलक शब्दों का प्रयोग किया है इससे उनकी भाषा के सौन्दर्य में वृद्धि अवश्य हुई है। इससे भाव-संप्रेषण की प्रक्रिया को गति मिली है। पाठक अत्यंत सरलता एवं सुचारुता से भाव को आत्मसात् कर सकता है।

अद्यावधि किये गये भाषागत अनुशीलन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि की भाषा तत्सम पदावली युक्त है। यद्यपि इसमें प्रसिद्ध और सरल शब्दों का प्रयोग करने की ओर कवि का झुकाव है। तद्भव, देशज, विदेशी एवं नादमूलक शब्दों का प्रयोग भावानुसार हुआ है। प्राय: कहीं भी शब्दाडंबर या अनावश्यक शब्दों की भरमार दृष्टिगत नहीं होती। भावानुरूप शब्द-योजना कवि की निजी विशेषता है। प्रसंगानुकूल शब्द-चयन एवं वर्ण-संघटन के कारण कवि की भाषा में नादात्मक संप्रेषणीयता आ गई है। अत: निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि सोहनलाल द्विवेदी को शब्दों की अर्थवत्ता की गहरी परख थी और उनके कौशल द्वारा उनकी काव्य भाषा जितनी सहज-सरल है, उतनी ही भाव-व्यंजना में पूर्ण समर्थ भी है।

मुहावरे :

मुहावरों के उचित एवं सटीक प्रयोग से भाषा में चित्त को द्रुत करने की शक्ति आ जाती है। ये गागर में सागर भरने की क्षमता रखते हैं। ये भावों व विचारों की

तीव्रता को अत्यंत संक्षेप में व्यक्त करते हुए काव्य-भाषा को स्वाभाविक,सजीव एवं प्रभावशाली बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं । द्विवेदी जी ने ज इन्हें प्रसंगानुकूल प्रयुक्त करके भाषागत सौंदर्य बढ़ाया है । साहजिक रूप से जो मुहावरे प्रयुक्त हो गये, कवि ने उनसे ही काम लिया है । सायास मुहावरों का प्रयोग करने की उनकी प्रवृत्ति नहीं है । कवि का लोकानुभव अत्यंत व्यापक होने से जीवन के विविध क्षेत्रों में उन्होंने प्रचलित मुहावरों का प्रयोग किया है और उनके द्वारा अभिव्यक्ति कौशल की वृद्धि की है ।यहाँ कतिपय उदाहरण उल्लेखनीय हैं :-

(१) 'टूटी झोंपड़ियों में अब तो
जीने के पड़ रहे कसाले ।
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोनेवाले ।'[८७]

(२)' आग फूँक दो कंगालों में
कंकालों में प्राण भरो ।
उठो आज इस जीर्ण पुरातन
भव में नव-निर्माण करो ।'[८८]

(३)' आज बहाने चले भगीरथ
उल्टी गंगा की सरिता,
तुम कहते मैं लिखूँ तुम्हारे
लिये नई कोई कविता ।'[८९]

(४)' बापू के कुछ मस्तानों ने
सत्ता की नींव हिलाई है ।
तुम जाओ तुम्हें बधाई है ।'[९०]

(५)' एक पर करोड़ हों निसार, वह चला गया ।
आह। आज राष्ट्रपिता राष्ट्र से छला गया ।'[९१]

(६) `अचल योग समाधि साधे
ध्यान की धूनी रमाये,
जड़ तपस्वी सा सुदृढ़
संयम नियम की रज लगाये।`६२

(७) `ताल ठोंककर आये थे जो
विरुदावलि का गान लिये,
धीर वीर हम हैं दिग्विजयी,
भूधर का अभिमान लिये।`६३

(८) पीकर आँसू के घूँट, रक्त के घूँट
गरल के घूँट, शांत,
निर्जीव शिला की मूर्ति सदृश
वह खड़ी रही नीरव नितांत।`६४

उपर्युक्त उद्धरणों में प्रयुक्त `जीने के पड़ रहे कसाले`, `आग फूँक दी`, `उल्टी गंगा बहाने चले`, `नींव हिलाना`, `निसार होना`, `धूनी रमाना`, `ताल ठोंककर आना` `आँसू, रक्त या गरल के घूँट पीकर रह जाना` इत्यादि आदि मुहावरे कुछ परिवर्तन के साथ प्रयुक्त होने पर भी उनके कलात्मक संयोजन से भाषा की प्रेषणीयता एवं प्रभावोत्पादकता में अपार वृद्धि हुई है।

(२) शब्द-शक्ति का सौन्दर्य :

काव्य में प्रयुक्त सरस शब्दावली विशिष्ट अर्थ-द्योतन की क्षमता रखती है। शब्दों के एकाधिक पर्यायों में से निश्चित अर्थ को व्यंजित करनेवाले शब्द का चयन करके कवि उसे प्रसंगानुकूल संयोजना के द्वारा भावानुसार अर्थ-विस्तार प्रदान करता है। `मनीषी कवि सामान्य शब्दों में भी उनके विशिष्ट प्रयोग के द्वारा असीम अर्थ का न्यास करता है। वह उनका प्रयोग ऐसे परिवेश में करता है कि वे नये रागात्मक सम्बंधों की

और संकेत करने लगते हैं । उनकी विशिष्ट अर्थ-संगति से मानस में ऐसे कमनीय बिंबों का सर्जन होने लगता है कि प्रमाता का चित्त चमत्कृत हो जाता है ।[९५] शब्दों के अर्थ वक्ता, श्रोता, प्रसंग और प्रयोग के अनुसार निश्चित किये जाते हैं । शब्द-शक्तियाँ अर्थ पर ही निर्भर हैं क्योंकि काव्यगत अर्थ को ध्वनित करनेवाली शक्तियाँ शब्द-शक्तियाँ कहलाती हैं । केवल सार्थक शब्दों में ही यह शक्ति निहित होती है कि किसी व्यक्ति, पदार्थ, वस्तु, क्रिया आदि का ज्ञान कराएँ । रस अर्थगत ही हैं । अलंकारों में भी अर्थालंकारों की प्रधानता रही है । रीति, गुण, आदि भी अर्थ से सम्बद्ध कहे जा सकते हैं । इस प्रकार अर्थ ही काव्य का सर्वस्व है ।

द्विवेदी जी की मनीषा शब्दार्थ-संतुलन में निष्णात है । उनके काव्य के अंतर्गत शब्दों के सटीक प्रयोग से अभिप्रेत अर्थ का अनायास प्रांजल द्योतन हुआ है । रूप-विधायन, व्यापार-सूचन, नाद-उत्पादन, भाव-प्रकाशन आदि सभी की दृष्टि से शब्दपारखी कवि की महती प्रतिभा का दर्शन किया जा सकता है । आचार्यों द्वारा अर्थ-द्योतन करनेवाली तीन शब्द-शक्तियाँ मानी गई हैं : अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना।[९६] काव्य में किसी शब्द का जो साधारण तथा मुख्य सांकेतिक अर्थ उसके गुण, द्रव्य तथा क्रिया के आधार पर समझा जाता है उसे अभिधा शक्ति कहते हैं ।[९७] शब्दकोष, व्याकरण, लोक-व्यवहार आदि में शब्द का रूढ़ अर्थग्रहण इसी शक्ति के आधार पर किया जाता है । लक्षणा और व्यंजना शब्द-शक्तियों के द्वारा काव्य में क्रमश: चमत्कारपूर्ण एवं रमणीय अर्थों की अभिव्यक्ति होती है । इन शब्द-शक्तियों का अधिकाधिक प्रयोग प्राय: कलावादी कवियों के काव्य में दृष्टिगत होता है । इसमें कलागत पच्चीकारी युक्त सजग प्रयास या तो अपनी विद्वता की धाक जमाने के लिये किया जाता है, या विद्वन्मंडली की तुष्टि के लिए किया जाता है । वस्तुत: यह प्रयास शब्दों के अर्थ-विस्तार एवं उनके विविध पक्षों के उद्घाटन के दृष्टिकोण से आवकार्य है । इससे कलागत काव्य-समृद्धि में वृद्धि अवश्य होती है किन्तु जिन कवियों का महद् उद्देश्य सत्काव्य प्रणयन करना और बहुजनहिताय या लोकमंगलकारी भावना से भावित

काव्य-सर्जना करना रहा हो, उन्हें लक्षणा एवं व्यंजना शब्द-शक्तियों से मंडित कलागत पच्चीकारी युक्त काव्य-सर्जना से कोई रुचि नहीं होती। वे तो अपनी लक्ष्यपूर्ति की साधना में रत रहते हैं। तदर्थ जिस प्रमुख भावधारा से प्रेरित होकर वे काव्य-सर्जना करते हैं, उसके व्यक्त हो जाने पर (अभिधार्थ), संतुष्टि का अनुभव करते हैं। उनका लक्ष्य काव्य के सत्य का सरलतम शब्दावली में, अनावश्यक अर्थ-विस्तार एवं कलागत पच्चीकारी की गहराई में उतरे बिना, प्रस्फुटन करना ही होता है। काव्य-कला मर्मज्ञ लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु', 'काव्य का अर्थबोध' नामक प्रसंग में अभिधार्थ का महत्व प्रतिपादित करते हुए लिखते हैं, "व्यंग्यार्थ और लक्ष्यार्थ से वाच्यार्थ अधिक सरस होता है। व्यंग्यार्थ या लक्ष्यार्थ से जो अर्थ-ग्रहण होता है, वह उतना रमणीय नहीं होता, जितना वाच्यार्थ।"[९८] कहना न होगा कि जनवादी कवि होने के नाते और लोकमंगल की अदम्य प्रेरणा से उत्प्रेरित होकर काव्य-सर्जना करते रहने के कारण द्विवेदी जी अभिधाप्रधान काव्य-सर्जन में ही रुचि रखते हैं। उनकी कविता में वाच्यार्थ को ही प्राधान्य मिला है। तभी तो द्विवेदी जी ने 'प्रभाती' में यह घोषित किया है कि उनका कवि जान-बूझकर कल्पना के विविधरंगी पंखों पर चढ़कर हिम-शृंगों पर नहीं उड़ा। कारण यह कि उनका पाठक सामान्य धरातल पर था। पूर्ववर्ती पृष्ठों में यह निर्दिष्ट किया गया है कि उन्होंने लक्षणा एवं व्यंजना शब्द-शक्ति के व्यामोह को छोड़ दिया है। उनका प्रमुख लक्ष्य पाठक के हृदय तक भाव-संप्रेषण ही रहा है। इसी में उन्हें संतोष भी है। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भाव-संप्रेषण की कला में वे सिद्धहस्त हैं। भाव के जिस पक्ष का उन्होंने स्पर्श किया उसे अपने सजीव एवं मूर्त रूप में जन-साधारण के सम्मुख अभिव्यक्त कर दिया। भाव और भाषा का, शब्द और अर्थ का जो सामंजस्यपूर्ण साहजिक रूपायन द्विवेदी जी की कविता में मिलता है, वह अपने आप में अद्वितीय है।

पूर्ववर्ती पृष्ठों में यह निर्दिष्ट किया गया है कि द्विवेदी जी ने लक्षणा एवं व्यंजना शब्द-शक्तियों के व्यामोह को अपने लक्ष्य की पूर्ति के निमित्त छोड़ा है।

तदर्थ उनके काव्य में उसके प्रयोग की प्रवृत्ति दृष्टिगत नहीं होती । फिर भी प्रसंगानुसार यत्र-तत्र उसका प्रयोग मिल जाता है । स्वातंत्र्य-प्राप्ति के निमित्त किये गये राष्ट्रीय जागरण के संदर्भ में तरुणों के आलस्य एवं विलासपूर्ण जीवन का परित्याग कराते समय तथा देश की वर्तमान दयनीय स्थिति का परिचय कराते समय कवि व्यंजना का सहारा लेता है । स्वातंत्र्योत्तर काल में भी राष्ट्र-निर्माण के पुनीत कर्तव्य की पूर्ति में शैथिल्य एवं भ्रष्टाचार -पूर्ण शासक के व्यवहार पर प्रहार करते हुए कवि व्यंजना का प्रयोग करता है । इसमें कवि की व्यथा और वेदनापूर्ण भावों की अभिव्यंजना होती है । 'भैरवी' में 'आज रुद्ध है मेरी वाणी', 'पूजागीत' में 'आज तुम किस ओर' तथा मुक्तिगंधा' में 'दिल्ली दरबार' आदि रचनाएँ इसका प्रमाण हैं । इन रचनाओं के उदाहरण परवर्ती पृष्ठों में 'व्यंग्य शैली' पर विचार करते समय प्रस्तुत किये जायेंगे ।

गुण, रीति और वृत्ति :

काव्य शोभा में अभिवृद्धि करनेवाले उन शब्द एवं अर्थ के धर्मों का अवबोध करानेवाले तत्व को गुण कहा गया है ।[९९] ये काव्य के बाह्याभ्यंतर दोनों पक्षों के उत्कर्ष साधक होते हैं । शब्दार्थ के अतिरिक्त रस, ध्वनि आदि को भी ये प्रभविष्णु बनाते हैं । आचार्य वामन ने गुणों को नित्य मानकर उनकी अनुपस्थिति में काव्य की शोभा की प्रतिपत्ति नहीं मानी है ।[१००] वर्ण-संघटन, शब्द-विन्यास, शब्द-चमत्कार एवं अर्थ की दीप्ति पर गुण आश्रित रहते हैं । इनके सफल एवं रमणीय निबंधन से काव्य समृद्ध एवं समादृत होता है ।[१०१] काव्य के अंतर्गत गुणों के महत्व के संदर्भ में प्राय: सभी विद्वान एकमत हैं किन्तु आचार्य वामन जहाँ एक ओर उनकी स्वतंत्र सत्ता निर्धारित करते हैं, वहाँ दूसरी ओर रस और ध्वनिवादी आचार्य उन्हें रसाश्रित एवं रसोत्कर्षक मानते हैं । गुणों के तीन प्रमुख भेद प्रचलित हैं : ओज, माधुर्य और प्रसाद । ये क्रमश: रसानुकूल चित्त की दीप्ति, द्रुत व प्रसन्न दशा के सूचक हैं । द्विवेदी जी के काव्य में यद्यपि तीनों गुणों की परिव्याप्ति भरपूर मात्रा में दृष्टिगत होती है तथापि उनकी राष्ट्रीय रचनाओं में प्रधानत: ओज गुण परिलक्षित होता है । इसका यह अर्थ नहीं कि उनकी राष्ट्रीय रचनाओं में प्रसाद या मधुर गुण कहीं मिलता ही नहीं, किन्तु प्रधानता ओजगुण की ही है । उनकी सांस्कृतिक एवं साहित्यिक रचनाओं में प्रसाद एवं मधुर गुण

का प्राधान्य है । प्रमाण के लिए कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं । सर्वप्रथम ओजगुण-प्रधान उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं -

ओजगुण :(१) "उठ बनकर भूकम्प भयानक
डगमग डगमग जग डोले,
उल्कापात बह्नि बरसा रे,
गलें मेरु ढलकें शोले ।"[१०२]

(२) "खंड खंड भूखंड, अंड ब्रह्मांड
पिंड नभ में डोलें,
मेरे मृत्युंजय की टोली
जब माँ की जय-जय बोलें ।"[१०३]

(३) "धधक रही है यज्ञकुंड में
आत्माहुति की शीतल ज्वाला,
होता ! मंद न पड़े हुताशन
नव नव अभिनव आहुतियाँ ला ।"[१०४]

उपर्युक्त उद्धरणों में संश्लिष्ट अक्षर-विन्यास या संयुक्ताक्षरों एवं समास-बहुलता दृष्टिगत होती है । इससे बंध की गाढ़ता[१०५] के कारण ओजगुण का प्रस्फुटन होता है ।

'भूकम्प', 'उल्कापात', 'वह्नि', 'खंड', 'भूखंड', 'ब्रह्मांड', 'मृत्युंजय' 'आत्माहुति', 'युद्ध', 'क्रुद्ध', 'ल्द' आदि शब्दों में संश्लिष्टता के कारण उक्ति में विशिष्ट नाद उत्पन्न होता है । इसमें ऐसी दीप्ति निहित रहती है जिससे सुननेवाले के मन में उत्साह उमड़ पड़ता है । 'ट', 'ठ'/'ड', 'ढ' आदि कठोर ध्वनियों की पुनरावृत्ति के कारण एक ऐसा घोष उत्पन्न होता है जो राग-तंतुओं को उद्दीप्त कर वीरत्व का भाव स्फुरित करता है । तीनों उदाहरण कवि की राष्ट्रीय रचनाओं में से उद्धृत किये गये हैं ।

ओजपूर्ण प्रधान ऐसे अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

माधुर्य :

किसी रचना विशेष में प्रयुक्त पदों की जहाँ पृथकता होती है वहाँ माधुर्यगुण निष्पन्न होता है ।[१०६] समास बहुला पदावली के निषेध से स्वभावत: शैली में गतिशीलता रहती है । एक ही अर्थ को विविध प्रकार से भिन्न-भिन्न भंगी से पुन: पुन: कहना माधुर्य है ।[१०७] कवि भावातिशयता के प्रसंग में प्रतिपाद्य के वैशिष्ट्य को प्रस्तुत करने के लिए माधुर्य की मनोमुग्धकारी अभिव्यक्ति करता रहता है । द्विवेदी जी के काव्य में विशेषकर उनकी साहित्यिक कृतियों `चित्रा` तथा `वासन्ती` में इस गुण का विशेष प्रभावशाली अंकन हुआ है -

(१) `सरोवरों की लघु-लघु लहरों-
में उठता मादक संगीत,
जैसे कोई जगा रहा हो
मधुमय स्मृति से स्वर्ण अतीत ।`[१०८]

(२) `सुधि बन आओ साकार रूप,
प्राणों के कण-कण में अनूप ।
रह जाय न कोई भेदभाव
तुम और रूप में और रूप ।`[१०९]

उक्त उदाहरणों में पदों की पृथकता दृष्टिगत होती है । साथ ही दीर्घ समासयुक्त पदावली की अनुपस्थिति से शैली में गतिशीलता आ गई है । दोनों उदाहरणों में कवि मृदु-मधुर स्मृतियों की सुधि को भावापन्न स्थिति में साकार करने का प्रयास करता है । एक ही अर्थ को भिन्न-भिन्न भंगी के द्वारा पुन:पुन: कहने का यत्न

करता है । ऐसे अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

प्रसाद :

प्रसाद गुण सामान्यत: उक्त दोनों गुणों की सम्मिश्रित अवस्था में रहता है । पदबन्ध की शिथिलता एवं गाढ़ता के मिश्रण में प्रसाद गुण रहता है ।[११०] कथन में स्वच्छता एवं प्रांजलता से शैली में प्रवाहमयता आती है । इसमें पद रचना इस ढंग से की जाती है कि अभिप्रेत अर्थबोध अत्यन्त सुचारुता और त्वरित गति से हो जाता है। अर्थ की निर्मलता(स्पष्टता) प्रसाद गुण है ।[१११] द्विवेदी जी का समस्त काव्य प्रसाद गुण सम्पन्न है । प्राय: उनकी समस्त रचनाओं में यह गुण दृष्टिगत होता है । अभिप्रेत अर्थ को सहज-स्वाभाविक ढंग से व्यंजित करने की कला में वे सिद्धहस्त हैं । शब्द-चयन और उसका विशेष संदर्भ में उचित प्रयोग करके एक ऐसा वातावरण निर्मित कर देते हैं कि अत्यन्त सरलता से अभिप्रेत अर्थ द्योतित हो जाता है । प्रसाद गुण युक्त कतिपय उदाहरण निम्नांकित हैं -

(१) 'अधरों में मृदु मधुर नाम बन,
प्राणों में बनकर नव स्पंदन,
रोम-रोम में मृदुल पुलक बन,
नव जीवन सरसो ।
नव नव रूप धरो चिर सुंदर,
मेरे अंग बसो ।'[११२]

(२) 'अश्रु पी-पीकर खिली जो
वह अधर मुसकान हूँ मैं,
जानकर अनजान हूँ
भूली हुई पहचान हूँ मैं ।'[११३]

उक्त दोनों उद्धरणों में कथन की स्वच्छता एवं प्रांजलता ही दृष्टिगत होती है। कहीं भी उक्ति की वक्रता नहीं है। अन्तःकरण की प्रसन्नता एवं निर्मलता के कारण अर्थ बोध में भी निर्मलता आ गयी है। अनायास ही सहज-स्वाभाविक ढंग से अभिप्रेत अर्थ व्यंजित हो जाता है। प्रसाद गुण के अन्य अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

रीति :

रीति का सामान्य अर्थ है मार्ग, प्रणाली या शैली। आचार्य वामन ने विशिष्ट पद-रचना को रीति घोषित किया और उसे ही काव्य की आत्मा स्वीकार किया।[११४] उनके मतानुसार गुणात्मक पदरचना रीति है। और काव्य के प्राण तत्व का निर्धारण करनेवाली विशेषता गुण।[११५] किन्तु परवर्ती आचार्यों ने रीति को पद-रचना तक ही सीमित करके उसे वृत्ति का नाम दिया जिसके तीन प्रकार निर्धारित किये। शास्त्रीय शब्दावली में वर्ण-विन्यास-क्रम को वृत्ति के नाम से अभिहित किया जाता है।[११६] इसका सामान्य अर्थ है भावानुकूल पद-रचना की शैली। गुण-द्योतनता में अभीष्ट योग प्रदान करने के कारण वृत्तियों का उनसे पारस्परिक सम्बंध स्वीकार किया गया है। ओज, माधुर्य और प्रसाद जैसे गुणों की व्यंजक पदावली को क्रमशः परुषा, उपनागरिका और कोमला वृत्तियों के नाम से अभिहित किया गया है।

परुषा वृत्ति :

काव्य में प्रसंगानुकूल जहाँ कर्ण-कटु एवं कठोर वर्णों का प्रयोग किया जाता है वहाँ परुषा वृत्ति विद्यमान रहती है। `ट` वर्ग, र,श,ष, संयुक्ताक्षरों एवं सुदीर्घ समासों से युक्त तत्सम शब्दावली के प्रचुर प्रयोग से अभिव्यक्ति में दीप्ति आ जाती है। ओज-प्रधान भावों को व्यंजित करने में यह वृत्ति अत्यधिक सहायभूत होती है। तदर्थ वीर, रौद्र तथा भयानक जैसे रसों को निष्पन्न करने में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।[११७] राष्ट्रीय जन-जागरण के वैतालिक द्विवेदी जी ने उत्साहमय आदि के प्रसंगों में कठोर

वर्णों की सम्यक् योजना करते हुए अपनी ~~रचनाएं~~ राष्ट्रीय रचनाओं में परुषावृत्ति का समुचित अंकन किया है। कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं -

(१) `बढ़ो, वीर बांकुरे समा में,
घोर युद्ध घमसान करो,
उठो, बढ़ो आगे, स्वतंत्रता का
स्वागत-सम्मान करो।`[११८]

(२) `बुझे मशाल न, तेल डाल लो,
अस्त्र-शस्त्र अपने संभाल लो,
हैं तोपें हुंकार मर रहीं
बापू बढ़ा अकेला।
आज युद्ध की बेला।`[११९]

उक्त दोनों उद्धरणों में कर्ण-कटु और कठोर वर्णों का प्रयोग अधिक दीखता है। साथ ही संयुक्ताक्षरों एवं अनुस्वारयुक्त शब्दों की पुनरावृत्ति से कठोरता में वृद्धि हुई है। `बांकुरे, युद्ध, स्वतंत्रता, सम्मान, अस्त्र-शस्त्र, हुंकार आदि शब्दों के विशिष्ट प्रयोग से परुषावृत्ति एक प्रकार के वजन(Force) के साथ अभिव्यक्त होती है।

उपनागरिका वृत्ति :

श्रुति-मधुर वर्ण-विन्यास वाली वृत्ति उपनागरिका है। नगर की चतुर एवं विदग्ध बनिताओं की सुष्ठु शब्दावली के समान होने के कारण इसका नामाभिधान इस तरह का हुआ है। इसमें सानुनासिक एवं अनुस्वार युक्त वर्णों का विशेष प्रयोग और `ट` वर्ग विहीन वर्णों को स्थान मिलता है। विशेषकर श्रृंगार, करुण एवं हास्य रसों में इस वृत्ति का अधिक प्रयोग परिलक्षित होता है।[१२०] उपनागरिका माधुर्य गुण व्यंजक वृत्ति है।

द्विवेदी जी रचित खण्ड काव्यों के अंतर्गत श्रृंगार एवं करुण प्रसंगों में, 'चित्रा' और 'वासन्ती' जैसी साहित्यिक कृतियों के मधुर गीतों में तथा देश की करुण एवं श्रृंगार के वर्णन प्रसंगों में प्राय: उपनागरिका वृत्ति दृष्टिगत होती है । कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं -

(१) "कुंदन-सी, कंचन, चंपक-सी
 विद्युत् की नूतन रेखा-सी,
श्रावणघन के नीलांचल के,
 तट के विशुभ्र ध्वलेखा-सी ।"[१२१]

(२) " किसी प्रकृति के निभृत कुंज में
 हो अपना नीरव संसार,
 कानन कुसुम किया करते हों
 जिसका नित नूतन श्रृंगार ।"[१२२]

उक्त दोनों उद्धरणों में श्रुति-मधुर वर्णों का विन्यास हुआ दृष्टिगत होता है। 'ट' वर्ग विहीन एवं सानुनासिक तथा अनुस्वार युक्त वर्णों के विशेष प्रयोग से माधुर्य व्यंजित होता है । श्रृंगार से सम्बंधित ये उद्धरण उपनागरिका वृत्ति के संपोषक हैं।

कोमला वृत्ति :

नाम के अनुसार गुण रखनेवाली इस वृत्ति को कोमला इसलिए कहा जाता है कि सामान्यत: इसमें कोमल वर्ण-विन्यास दृष्टिगत होता है । इसमें विशेषकर ल,व,स तथा प्रत्येक वर्ग के तृतीय वर्णों- ग,ज,द,ब जैसे कोमल वर्णों का प्राचुर्य रहता है । कोमल, सुकुमार भावों की अभिव्यक्ति के लिए तथा श्रृंगार, करुण,शांत, अद्भुत आदि रसों के उद्रेक में इस वृत्ति का उपयोग किया जाता है । कोमला,प्रसाद गुण व्यंजक वृत्ति है और प्रसाद अंत:करण की प्रसन्नता का द्योतक है । प्रसाद गुण, ओज एवं माधुर्य गुण में भी विद्यमान रहता है । वास्तव में प्रसाद उत्तम काव्य में

पाया जानेवाला सामान्य गुण है ।[१२३] द्विवेदी जी का काव्य प्रसाद गुण सम्पन्न है और कोमला वृत्ति का विशिष्ट संसार उसमें दृष्टिगत होता है । कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं -

(१) " तुम किस ललना की ललित लली,
तुम किस तड़ाग की कुमुदकली ?
प्राणों में मधु बरसाती हो
लहरा लावण्य लता लवली ।"[१२४]

(२)" इस लाली से जग की लाली,
इस लाली से सब हरियाली,
इस लाली से श्री श्रीबाली,
है अंग अंग में अंगराग,
उनके चरणों का अरुण राग ।"[१२५]

उक्त प्रथम उदाहरण में 'ल' की अनुप्रासात्मक पुनरावृत्ति से भावों की सुकुमारता अभिव्यंजित होती है । अपने प्रियतम के लालित्यपूर्ण लावण्य का सांकेतिक उद्घाटन करने में कवि के चित्त की प्रसन्नता भी व्यंजित हो जाती है । द्वितीय उदाहरण में 'ल', 'स', 'ग' आदि कोमल वर्णों के प्रचुर प्रयोग से कोमला वृत्ति निष्पन्न होती है । प्रियतम के अरुण राग की प्रकृति के विभिन्न अंगों पर लालिमा छा जाना कहकर कवि की चेतना के विस्तार की ओर संकेत किया गया है । चित्त की प्रसन्नता और कोमलतम अनुभूतियाँ दोनों उदाहरणों में विद्यमान हैं । इस तरह कोमला वृत्ति के अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

गुणों एवं वृत्तियों के संदर्भ में किये गये उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह तथ्य सामने आता है कि काव्य-भाषा में शब्द एवं वर्णों का समुचित चयन और तदनुसार प्रयोग से काव्य की अर्थगत संप्रेषणीयता में वृद्धि होती है । अत: काव्य में गुण और वृत्ति के महत्व के कारण आधुनिक काव्य में इन्हीं पर आधारित काव्य-शैलियों का

निर्माण हुआ है। किसी भी कवि के शब्द-चयन और वर्ण संघटन की विशिष्ट दृष्टि के कारण उसके काव्य में भी विशिष्ट शैली का प्रयोग होता रहता है। तदर्थ द्विवेदी जी के काव्य का भी शैलीगत अध्ययन अपेक्षित है।

शैली :

आधुनिक हिन्दी साहित्य में 'शैली' शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त होता है वह अंग्रेजी के 'स्टाइल' का अनुवाद है और अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से हिन्दी में आया है। इसका यह अर्थ नहीं कि हमारे प्राचीन भारतीय साहित्य में शैली विषयक कोई चिन्तन नहीं किया गया। हमारे मनीषी आचार्यों ने एक ओर जहाँ काव्य की आत्मा पर विचार किया, वहाँ दूसरी ओर उसकी अभिव्यक्ति कला पर भी विचार किया है। जीवन के सत्य की तरह सार्थ शब्द-प्रयोग को भी काव्य के लिए अनिवार्य तत्व माना गया है। पूर्व निर्दिष्ट किया गया है कि आचार्य वामन ने 'विशिष्ट पदरचना रीति :' कहकर काव्य की शैली का ही संकेत दिया है। विशिष्ट का अर्थ है गुणायुक्त।

आधुनिक संदर्भ में भावानुभूति की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति कला को शैली समझा जाता है। डा० देवराज शैली को एक गुण मानते हुए उसकी परिभाषा इस प्रकार देते हैं - 'शैली अनुभूत विषयवस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है, जो उस विषय-वस्तु की अभिव्यक्ति को सुंदर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं।'[१२६] कवि अपने अभीष्ट को जितनी प्रभाव क्षमता के साथ अभिव्यक्त कर सके उतना ही वह अच्छा शैलीकार माना जाएगा। किन्तु प्रश्न उठता है कि कोई रचना अपने अभीष्ट को संपूर्ण प्रभाव के साथ व्यक्त कर सकी है या नहीं यह कैसे जाना जा सकता है ? इसका उत्तर डा० भगीरथ मिश्र के शब्दों में इस तरह दिया जा सकता है। वे शैली के तत्वों पर विचार करते हुए लिखते हैं - 'शब्द-चयन, वर्ण-संघटन, शब्द-रचना, वाक्य-विन्यास, छंद एवं लय तथा संगीतात्मकता शैली के मूल एवं गठन के तत्व हैं। इनसे शैली का निर्माण होता है। परन्तु इन गठनों के साथ-साथ जो इनके परिणामस्वरूप व्यंजकता या प्रभाव प्रकट होता है, वह भी शैली के स्वरूप को निश्चित करने में सहायक होता है क्योंकि उसका

सम्बंध भाषा के अर्थ व्यंजक पक्ष से है ।[१२७] उक्त तत्वों के उचित प्रयोग एवं उनसे निष्पन्न रचना की प्रभाव व्यंजकता के आधार पर शैली की क्षमता की परख की जा सकती है । इस तरह शैली काव्य के स्वरूप तथा उसकी उदात्तता-अनुदात्तता को स्पष्ट करने में सहायक सिद्ध होती है । डा० मिश्र जी के अभिमत में उसके छः प्रकार हैं । ये हैं- सरस शैली, मधुर शैली, ललित शैली, विदग्ध शैली, उदात्त शैली तथा व्यंग्य शैली ।[१२८] पंडित सोहनलाल द्विवेदी के काव्य का अनुशीलन इन शैलियों के आधार पर किया जा रहा है ।

सरस शैली :

द्विवेदी जी की भाषा का अनुशीलन करते हुए यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि उनकी भाषा सहज, सरल एवं सादगी से परिपूर्ण है । भावानुसार सरल शब्दावली का प्रयोग करने के कारण वह सर्वजन सुलभ हो सकी है । उनकी भाषा में प्रसाद गुण प्राय: सर्वत्र देखने को मिलता है । प्रसाद गुण संपन्न ये ही विशेषताएँ सरस शैली का निर्माण करती हैं । सरस शैली के कवि या लेखक लोकप्रिय होते हैं । राष्ट्रीय काव्य-धारा के प्राय: सभी कवि सरस शैलीयुक्त अपनी भाषा का प्रयोग करते रहते हैं । जिससे काव्य-सर्जन का निजी लक्ष्य भलीभांति प्राप्त हो सके । मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर, बालकृष्ण शर्मा `नवीन` प्रभृति राष्ट्रीय कवि सरस शैली के लेखक हैं । द्विवेदी जी की कविता के एतद्विषयक कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं :-

(१)" अंधियाली में उजियाली-सी
सूखे वन में हरियाली-सी
तुम हो अतीत-सी मधुर कौन
उषा की मादक लाली-सी ।"[१२६]

(२)"सेगाँव बने सब गाँव आज
हममें से मोहन बने एक,

उजड़ा वृन्दावन बस जावे
फिर सुख की बंशी बजे नेक,
गूंजे स्वतंत्रता की तानें
गंगा के मधुर बहावों में ।
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ?
वह बसा हमारे गांवों में ।[130]

(३) प्रकृति जब उल्लासमय है,
सृष्टि नवसुख लासमय है ।
तब तुम्हीं क्यों खिन्न मन में
रस भरी मृदु तान सुन लो ।
कह रहा मधुमास सुन लो ।[131]

उपर्युक्त उद्धरणों में सहज-सरल भावाभिव्यक्ति दृष्टिगत होती है । कवि का अभिप्रेत अर्थ प्रसादगुण के कारण अनायास ही चित्त को प्रसन्न करता हुआ संप्रेषित हो जाता है । प्रसाद गुण से सम्बद्ध कोमला वृत्ति सर्वत्र दृष्टिगत होती है । 'ल, व,स, ग,ज,द,ब, आदि पूर्वनिर्दिष्ट सुकोमल वर्णों की बारम्बार आवृत्ति उक्त उद्धरणों में परिलक्षित की जा सकती है । द्वितीय उद्धरण में 'वृन्दावन' और 'वंशी' जैसे दो प्रतीकों का सहज उपयोग करके कवि ने अनेक भावों की व्यंजना कर दी है । कवि की भाषा की यह सर्वाधिक विशेषता है कि पाठक उनकी कविता का भाव बड़ी प्रसन्नता के साथ आत्मसात् करता रहता है । भाषा और भाव का सामंजस्य कवि को अत्यधिक लोकप्रिय बना देता है ।

मधुर शैली :

प्रस्तुत शैली में सुमधुर संगीतमय शब्दों के उचित प्रयोग को प्राधान्य मिलता है । माधुर्य गुण व्यंजक एवं उपनागरिका वृत्ति से युक्त मधुर भावों की अभिव्यक्ति इस शैली की विशेषता होती है । इसमें 'ट' वर्गविहीन तथा सानुनासिक एवं अनुस्वार युक्त

वर्णों का इसमें विशेष प्रयोग रहता है । कर्णकटु स्वरों का प्रयोग इसमें निषिद्ध है । अतः भयानक, रौद्र तथा बिभत्स प्रसंगों का वर्णन इसमें नहीं होता । विशेषकर श्रृंगार, करुण तथा हास्य का वर्णन इसमें अधिक रहता है । द्विवेदी जी की कविता से मधुरशैली के कतिपय उदाहरण निम्नांकित हैं -

(१) " मातृ-मंदिर में चलो, प्रिय,
हो रही है आरती ।
शंख-ध्वनि उठने लगी है,
दीप की लौ भी जगी है,
आज वीणापाणि ले वीणा
स्वयं झनकारती । (मन्नु मातृमंदिर में) "[१३२]

(२) " मंद स्मिति, नमित नयन, अलस देह,
कामना-तरंगों से,
यौवन नव फूट पड़ा अपने नव यौवन में
जैसे रव त-रश्मियाँ बिखरतीं सुमेरु पर
ललित लतिका पर, पल्लव पर, तृण-तृण पर, कण-कण पर । "[१३३]

(३) " तुम लघु-लघु प्रिय-प्रिय कौन अरी
फिरती रहती चंचल- चंचल ।
मेरी पलकों पर फैलाती
अपनी मादकता का अंचल । "[१३४]

इन उद्धरणों में श्रुति-मधुर वर्णों का विन्यास सहज ही देखा जा सकता है । श्रृंगारपरक इन प्रसंगों में मार्दव युक्त भावों के अनुरूप कोमल पदावली का प्रयोग हुआ है । सानुनासिक एवं अनुस्वार युक्त वर्णों का प्रयोग संगीतात्मकता भर देता है । 'चित्रा' और 'वासन्ती' से मधुर शैली के ऐसे अन्य उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं ।

ललित शैली :

जहाँ शब्दों का कलात्मक प्रयोग इस प्रकार किया जाता है कि चित्रात्मक कल्पना और वर्णन की सूक्ष्म सजीवता उभर आती है, वहाँ पर ललित शैली होती है। इसमें उक्ति चमत्कार एवं आलंकारिकता का समावेश रहता है।[१३५] इस दृष्टि से विचार करने पर द्विवेदी जी के काव्य में ललित शैली का प्राय: अभाव-सा दीखता है। यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि द्विवेदी जी उक्ति चमत्कार एवं भाषा में आलंकारिक प्रयोग के पक्षपाती नहीं हैं। अत: कलागत पच्चीकारी में वे रुचि नहीं रखते हैं। जनवादी कवि होने के कारण वे अनावश्यक बौद्धिक व्यायाम करके अपने पाठक को चमत्कृत करना नहीं चाहते। अत: उनकी भाषा सहज-सरल अभिव्यक्ति करती हुई लक्ष्य पूर्ति करना ही पसंद करती है। इस दृष्टिकोण से ललित शैली का अभाव हमें खटकता नहीं, अपितु कवि की लक्ष्य-प्रियता एवं तदनुसार भाषा-प्रयोग कवि के प्रति समादर का भाव उत्पन्न करता है। हां, प्रसंगानुरूप वर्णन में चित्रात्मकता कहीं-कहीं अवश्य दृष्टिगत होती है। उदाहरणार्थ -

'गौतम ने अपने पुण्य पाणि से
फफोलों पर, छालों पर, घाव पर, पीप पर,
शीतल जल छिड़का,
निज हाथ से धोया उसे,
जी-सी उठी मृत-हत वासवदत्ता तुरंत,
देखने लगी सतृष्णा गौतम की मूर्ति को
सेवा की स्फूर्ति को।'[१७० १३६]

विदग्ध शैली :

'जिस शैली में शब्दों का सांकेतिक, लाक्षणिक या प्रतीकात्मक प्रयोग होता है और जहाँ शब्दों से स गूढ़ अर्थ और क्लिष्ट कल्पना स्पष्ट होती है, वहाँ विदग्ध

शैली मानी जाती है। प्रायः इस शैली का काव्य व्याख्या सापेक्ष होता है।[१३७] द्विवेदी जी की भाषा में इस दृष्टि से विचार करने पर शैली की विदग्धता प्रायः नहीं मिलती। यह सुस्पष्ट है कि कवि एक विशेष लक्ष्य को लेकर काव्य-सर्जना करता रहता है। अतः लक्षणा, व्यंजना आदि शब्द-शक्तियों का प्रयोग प्रायः वे नहीं करते। अभिधाप्रधान काव्य के कारण शैली में विदग्धताप्रायः परिलक्षित नहीं होती। हाँ 'चित्रा' एवं 'वासन्ती' में जहाँ श्रृंगार परक वर्णन आये हैं, वहाँ कवि ने प्रतीकात्मक प्रयोग भी किये हैं। विदग्ध शैली का आभास इन प्रसंगों में परिलक्षित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ-

(१) गाओ मधुप गान।
हो विश्व पतझर में फिर, नवल प्रात,
मधु ऋतु खिले, खिल उठें कोटि जलजात,
नव दल, सुरभि नव, नव मधु, नवल वात
युग युग विरस, फिर सरस हो उठे प्राण।[१३८]

(२) अलि! रचो छंद
मधु के मधुऋतु के सौरभ के,
उल्लास भरे अवनी नभ के,
जड़जीवन का हिम पिघल चले
हो स्वर्णभरा प्रतिचरण चल मंद।
अलि! रचो छंद।[१३९]

इन उद्धरणों में 'मधुप', 'पतझर', 'जलजात', 'मधुऋतु', 'अली' आदि प्रतीकों के प्रयोग के कारण शैली में विदग्धता आ गई है। कवि के अंतरतम के गूढ़ भावों की सरस अभिव्यक्ति इनमें हुई है जो व्याख्या-सापेक्ष है।

उदात्त या ओज शैली :

ओजगुण संपन्न प्रस्तुत शैली में वीरता, उत्साह, भय, क्रोध आदि भावों का

वर्णन रहता है । कर्ण कटु व कठोर शब्दों का प्रयोग इसमें होता रहता है । इन भावों में अभिव्यक्ति का आवेग तीव्र रहता है । तदर्थ इसमें प्रयुक्त होनेवाली भाषा एवं शब्दावली समास बहुला, एवं संयुक्ताक्षरों से परिपूर्ण रहती है । चन्द, भूषण, निराला, दिनकर, नवीन आदि वीरोत्तेजक भावों को उद्दिक्त करनेवाले कवियों के काव्य ओजशैली प्रधान हैं । द्विवेदी जी भी प्रमुख रूप से राष्ट्रीय कवि होने के कारण उनके काव्य में ओजगुण प्रधान उदात्त शैली के अनेक उदाहरण मिल सकते हैं । राष्ट्रीय जागरण के वैतालिक द्विवेदी जी के काव्य में प्राय: सर्वत्र उत्साहवर्धक छंद मिलते हैं । जिन्हें पढ़कर पाठक के अंग-प्रत्यंग में वीरोत्साह का विद्युत्-प्रवाह प्रवहमान होने लगता है । ओज शैली युक्त कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं :-

(१) "रुद्र के समान शीश कंठ में माला कर
चला युद्ध करने, क्रुद्ध कर में भाला कर,
जाता जिस ओर, प्रलय घटा बन छाता उधर
पाट-पाट भूमि, लटा-लटा नरमुंडों से
कोटि मुंडमाल रणचंडी के चरणों में
अर्पित समर्पित कर बना वह अजेय,
नित्य गेय ।" १४०

(२) "फूंकों शंख, ध्वजाएं फहरें
चले कोटि सेना, घन घहरें
मचे प्रलय ।
बढ़ो अभय ।
जय जय जय
तोपें फटें, फटे भू अंबर
धरणी धंसे धंसे, धरणीधर,
मृत्युंजय
बढ़ो अभय ।
जय जय जय ।" १४१

(३)' सिंहासन पर नहीं वीर ।
बलिवेदी पर मुसकाते चल ।
ओ वीरों के नये पेशवा ।
जीवन जोति जगाते चल ।
कल लखनऊ गूंज उठा था,
आज हरिपुरा हहर उठे,
बने अमिट इतिहास देश का
महाक्रांति की लहर उठे ।'[१४२]

इन उद्धरणों में ओज शैली दृष्टिगत होती है । वीरोत्साहवर्धक भावों की अभिव्यक्ति में कवि खुलकर खिलता है । कारण स्पष्ट है कि कवि का लक्ष्य राष्ट्रीय जन-जागरण करना है । कवि की मानो निःशेष वृत्तियाँ इस ओजगुण प्रधान भावाभिव्यक्ति में रममाण होती हैं । ओज शैली के ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

व्यंग्य शैली :

जिस शैली में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ का प्राधान्य हो और कवि के कथन में अभिव्यक्तिगत वक्रतापूर्ण चमत्कृति हो उसे व्यंग्य शैली कहते हैं । एक तीखा प्रभाव व्यक्त करने की लालसा जो कवि में होती है, वह इस शैली के द्वारा व्यक्त होती है । शब्द-शक्ति पर विचार करते समय पूर्ववर्ती पृष्ठों में यह उल्लेख किया जा चुका है कि व्यंजना शब्द-शक्ति का प्रयोग द्विवेदी जी के काव्य में बहुत कम मिलता है । उक्ति की वक्रता में कवि का प्रायः विश्वास नहीं रहा । अपने कथ्य को सीधी और सरल अभिव्यक्ति प्रदान करना कवि का लक्ष्य रहा है । अतः व्यंग्य शैली का प्रयोग अत्यल्प मात्रा में मिलना स्वाभाविक है । फिर भी प्रसंगानुरूप सहज अभिव्यक्ति में जहाँ व्यंजनापूर्ण प्रयोग हुए हैं उन्हें उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जाता है । यथा -

'मुझे भरोसा रहा नहीं अब दिल्ली के दरबार का ।'[१४३]

'दिल्ली दरबार' नामक उनकी प्रसिद्ध रचना की उक्त पंक्ति में कवि तत्कालीन शासनगत विकारों के प्रति अपने आक्रोश को व्यक्त करते हुए जो व्यंजना करते हैं वह बड़ी तीखी

है । 'दिल्ली के दरबार' में लाक्षणिकता भी दृष्टिगत होती है । मुगलकालीन दरबार की -सी विलासिता एवं चाटुकारिता के प्रति भी संकेत मिलता है ।

'सर्वनाश लाया अपने घर,
महामूढ़ मानव अभिमानी ।
तुम कहते हो गीत सुनाऊँ,
आज रुद्ध है मेरी वाणी ।'[१४४]

प्रथम दो पंक्तियों में भारत की वर्तमान स्थिति का दयनीय चित्र उपस्थित करके शेष दो पंक्तियों में कवि ने कर्तव्य-च्युत तरुण पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया है ।

(३) अलंकार योजना :

लालित्यवर्धक तत्व को अलंकार कहते हैं । इसका उद्देश्य काव्य की शोभा बढ़ाना ही है । दण्डी जैसे अलंकारवादी आचार्य ने उसे काव्य का मूल तत्व एवं समस्त शोभाकारक धर्मों का द्योतक माना ।[१४५] आचार्य वामन ने उसे काव्य का सौंदर्य कहा ।[१४६] रसवादियों ने उसे रस का उपकारक[१४७] एवं शब्दार्थ का अस्थिर धर्म माना ।[१४८] वस्तुत: अलंकार काव्य के सौंदर्य की अभिवृद्धि में सहायक अवश्य हैं, किन्तु वे काव्य के साध्य नहीं बन सकते । आधुनिक हिंदी के आचार्यों में महावीर प्रसाद द्विवेदी,[१४९] रामचन्द्र शुक्ल,[१५०] श्यामसुंदरदास[१५१] प्रभृति मनीषी अलंकारों के सहज-स्वाभाविक प्रयोग के पक्षपाती हैं । इसी प्रकार आधुनिक हिंदी कविता के मर्मज्ञ कवि जयशंकर प्रसाद ने अलंकार अथवा कथन चमत्कार का महत्व भाव पर ही आधारित माना है ।[१५२] सुमित्रा-नंदन पंत ने भी अलंकारों के अस्वाभाविक प्रयोग की निन्दा और स्वाभाविक प्रयोग की प्रशंसा करके उन्हें भावाभिव्यक्ति के लिए आवश्यक उपादान के रूप में माना है ।[१५३] सारांश यह कि आधुनिक हिंदी काव्य कला के उक्त मर्मज्ञ कवि एवं समालोचकों ने काव्य की अनुभूति की तीव्रता, तन्मयता एवं सद्‌ सदाशयपूर्ण आनंद को महत्व देते हुए अलंकार को सौन्दर्याभिवृद्धि के साधन के रूप में माना है । कहना न होगा कि हमारे आलोच्य कवि द्विवेदी जी भी उपर्युक्त विचारधारा के पक्षपाती हैं । वे भी भावानुभूति की तीव्रता,

एवं तन्मयतापूर्वक उसकी सहज अभिव्यक्ति में मानते हैं। सदाशयपूर्ण राष्ट्रीय जागरण एवं नव-निर्माण के लक्ष्य की संपूर्ति की एकान्त साधना में लीन उन्हें कृति में विभिन्न अलंकारों से युक्त भाषा की सजावट के लिए न तो रुचि है, न अवकाश। उनका कवि आद्यंत भावाभिव्यक्ति में मार्मिकता, सजीवता एवं प्रभविष्णुता लाने के प्रयत्न में व्यस्त रहा है। हाँ, इस प्रक्रिया में सहायक सिद्ध होनेवाले आवश्यक अलंकारों का प्रयोग भी यथासमय करता रहा है। वाक्य की वक्रतामूलक अभिव्यक्ति में प्रायः वे विश्वास नहीं करते। शब्द-शक्ति की गूढार्थ अभिव्यक्ति में अरुचि रखनेवाले कवि स्वभावतः विरोधमूलक अलंकारों (जैसे अप्रस्तुत प्रशंसा, व्याजस्तुति, विरोध आदि) का प्रयोग अभीष्ट नहीं मानते। उन्होंने अपने काव्य में अप्रस्तुत वस्तु-योजना के रूप में अर्थालंकारों तथा वर्ण-विन्यास के रूप में शब्दालंकारों का प्रयोग किया है। इन अलंकारों का उन्होंने भाव या विचार के उत्कर्ष-साधन के रूप में प्रयोग किया है। प्रस्तुत का प्रकाशन ही उनका लक्ष्य रहा है अप्रस्तुत का नहीं।

अर्थालंकार :

द्विवेदी जी के काव्य का अनुशीलन करने पर यह कहा जा सकता है कि उनका कवि अलंकारों के वैविध्यपूर्ण एवं चमत्कार युक्त अर्थ-योजना में संलग्न नहीं हुआ। सहजरूप से भावाभिव्यक्ति में सहायक सिद्ध होनेवाले अलंकारों को ही उनके काव्य में स्थान मिला है। प्रायः सर्वत्र अलंकारों का अनायास प्रयोग परिलक्षित होता है। अर्थालंकारों में अत्यन्त प्रचलित उपमा एवं रूपक जैसे साधर्म्यमूलक अलंकारों का कवि ने सविशेष प्रयोग किया है।

उपमा :

उपमा के भेद-प्रभेदों में न पड़कर पूर्णोपमा, मालोपमा जैसी उपमाओं का प्रयोग कवि को अधिक रुचिकर प्रतीत हुआ है। उपमा के माध्यम से आशय को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित उदाहरण यहाँ उल्लेखनीय हैं :-

(१) 'आज जननी के लिए
अनुराग नूतन त्याग जागा,
लौह कड़ियाँ तोड़ दूँ ज्यों
सूत का हो मृदुल धागा।'[१५४]

यहाँ 'सूत के मृदुल धागे' का उपमान प्रस्तुत करके कवि ने वज्र-सम कठोर कार्य को असीम उत्साह के साथ शीघ्र ही बिना विशेष प्रयास के पूरा कर देने का संकेत कर दिया। परतंत्रता की लौह शृंखलाओं को तोड़ना सरल काम नहीं है, फिर भी कवि को विश्वास है कि मातृभूमि के प्रति उद्‌बुद्ध निष्कपट प्रेम इसे सरलतम बना सकता है। तभी तो उन्होंने मृदुल सूत के धागे के साथ संतुलित किया है। इस तरह कवि ने पूर्णोपमा के सार्थ प्रयोग के द्वारा चमत्कारपूर्ण ढंग से सूक्ष्म- सक्षम भावाभिव्यक्ति की है। इससे कलागत सौन्दर्य की वृद्धि हुई है।

(२) 'सरोवरों की लघु-लघु लहरों-
में उठता मादक संगीत,
जैसे कोई जगा रहा हो
मधुमय स्मृति से स्वर्ण अतीत।'[१५५]

संगीत का मानव हृदय से प्रगाढ़ सम्बंध रहा है। सरोवर की स्वच्छंद लघु-लघु लहरियों के उत्थान-पतन से निष्पन्न ध्वनि के मादक वातावरण में स्वर्णिम अतीत की मधुमय स्मृतियों का मानस पटल पर तरंगायित हो जाना सहज-स्वाभाविक है। यहाँ कवि ने उपमान के द्वारा चमत्कार की अपेक्षा सहज-स्वाभाविक अनुभूति को व्यंजित करने का यत्न किया है। प्रकृति का संगीत मानव हृदय के रागात्मक तंतुओं को झंकृत करने में कहाँ तक सहायक सिद्ध होता है, यह निर्दिष्ट करने का कवि का प्रयास है।

(३) 'घुलमिल जहाँ आज बैठे हैं
दैत्य देवता हिले मिले,

जैसे सुख दुख या कि
पतन उत्थान आज हों साथ खिले ।[१५६]

सामान्यतः देवता और दैत्य में जन्मजात शत्रुता होती है । वे कभी परस्पर मिलना पसंद नहीं करते । किन्तु आज अमृत-प्राप्ति के सर्वमान्य लोभ ने उन्हें एकत्रित करने का प्रयास किया है । इस असंभव को संभव बनाने की स्थिति के लिए साधर्म्य मूलक उपमान ढूंढते हुए कवि ने 'सुख-दुख' तथा 'उत्थान-पतन' जैसे दो सटीक उपमानों को प्रस्तुत करके निजी भाव को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है । इससे कलागत सौंदर्य की वृद्धि हुई है और भाव को गति एवं शक्ति भी मिली है ।

इसके अतिरिक्त कवि ने मालोपमा का भी ठीक-ठीक प्रयोग किया है । कवि भाव-विभोर होते हुए जब उपमेय से तादात्म्य स्थापित कर लेता है तब तीव्रतम भावावेश की स्थिति में एक उपमान से उन्हें संतोष नहीं होता है । उपमानों की जैसे वे लड़ियाँ बरसा देते हैं । मालोपमा के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं :-

(१) प्रणयी की मृदुल उमंगों-सी
लज्जा की तरल तरंगों-सी
यह खेल कौन अद्भुत रचती हो
इन्द्रधनुष के रंगों-सी ?[१५७]

सरोवर की लहरें हवा के साथ अठखेलियाँ करते हुए नित्य निरंतर विविध खेल खेलती रहती हैं । आश्चर्यान्वित करनेवाली इस प्रक्रिया से तरंगायित कवि का मन तीन विविध उपमान प्रस्तुत करते हुए उसकी प्राकृतता एवं शाश्वतता की ओर संकेत करते हैं । प्रणयी के हृदय में कोमलतम उमंगों का उठना और लज्जाशील व्यक्ति के मुखारविंद पर तरल तरंगों का प्रस्फुटित होना लहरों की प्रकृत और शाश्वत प्रक्रिया की ओर संकेत करते हैं, तो इन्द्रधनुषी रंगों की विविधता, सूर्य की किरणों में विविध रंगी लहरों से साधर्म्य उपस्थित करती है । इस तरह मालोपमा के द्वारा कवि लहरों के साधर्म्यमूलक विविध पदार्थों का भलीभांति उद्घाटन कर सका है ।

(२) `सुन्दरता की नव उपमा-सी,
नायिका नवीन निरुपमा-सी
लावण्यमयी खिलनेवाली
यौवन की मादक सुषमा-सी ।`[१५८]

कामार्त तिष्यरक्षिता प्रणय निवेदन के लिए अभिसारिका नायिका के रूप में जब कुणाल के कक्ष की ओर अभिगमन करती है तब उसके लावण्यमय मादक यौवन का वर्णन कवि विविध उपमानों के द्वारा करता है । एक ओर उसे नित्य नवीन सौंदर्य की उपमा दी गई है तो दूसरी ओर उमंगों से परिपूर्ण निरुपमेय नायिका की उपमा दी गई है । यहाँ सौंदर्य इस बात का है कि जो निरुपमेय है, जिसकी उपमा नहीं दी जा सकती, उसके समान कहकर कवि ने उपमान की परिसीमा से भी नायिका को ऊपर उठाकर उपमित किया है । ऐसा करते हुए कवि ने नायिका के अनुपमित सौन्दर्य की ओर संकेत किया है जो भावाभिव्यंजना में सौंदर्य की वृद्धि करता है । इस तरह कवि तीव्र भावावेग की स्थिति में मालोपमा की सृष्टि करता है जो अभिव्यंजना कौशल को कलामय बना देता है । पूर्णोपमा एवं मालोपमा के ऐसे अन्य उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं । कवि ने श्रृंगार के प्रसंगों में उपमा अलंकार का अधिक प्रयोग किया है ।

रूपक :

उपमा के अतिरिक्त कवि रूपक अलंकार का भी प्रयोग करता रहता है । `चित्रा` और `वासन्ती` जैसी काव्य-कृतियों में ऐसे प्रयोग परिलक्षित होते हैं । कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं -

(१) `आज सागर शांत है उर्मिल
न पागल ज्वार में प्रिय ;
आज बरसों बाद आये
इस कुटी के द्वार में प्रिय ।`[१५९]

(२) `आज ढीली बीन के ये
तार फिर से सध गये हैं,
मधुर मीठी पीड़ उठती
स्वर निराले औ` नये हैं ।`[१६०]

या अपने निर्धन भारत की
निधि की अनुपम मूर्ति कहूँ ?
+ + +
वीरों का अभिमान कहूँ
या शूरों का सम्मान कहूँ ?
मृदु मुरली की तान कहूँ,
या ~~ब~~ रणभेरी का गान कहूँ ?'[१६३]

महर्षि मालवीय जी के प्रति कवि के विभिन्न अमूर्त भावों को संदेह अलंकार के प्रयोग के द्वारा मूर्तता प्राप्त हुई है ।

मानवीकरण :

प्रकृति का मानवीकरण करने की प्रवृत्ति परंपरा प्राप्त है । द्विवेदी जी का कवि भी वासन्ती प्रकृति की उल्लासमय चेतनावस्था की झाँकी कराते हुए उसमें मानवीय लक्षणों को आरोपित करते हैं । यथा-

(१) 'मलयानिल बहता मंद- मंद,
सुमनों से कहता मधुर छंद,
वे उड़ चलते नीले नभ पर
सौरभ बनकर चढ़कर अमंद ।'[१६४]

(२)' तृण तरु पल्लव हुए सजग से
कण-कण में चेतनता छहरी ।
आई मलियानिल की लहरी ।
लिया समेट लता ने अलकें,
खोली मृदु सुमनों ने पलकें,
उडने लगे मधुप मधु पीने
तजकर मादक निद्रा गहरी
आई मलियानिल की लहरी ।'[१६५]

क्ष अर्थालंकारों के संदर्भ में किये गये उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि द्विवेदी जी ने अतिप्रसिद्ध अलंकारों का प्रयोग किया है। उन्होंने न अलंकारों के वैविध्य को अपनाया है न उनके भेद-प्रभेदों को अपनाकर अपनी दक्षता का दावा किया है। अपनी भावानुभूतियों की सहज-सरल अभिव्यक्ति में अनायास प्रयुक्त हो जानेवाले अर्थालंकारों को ही प्रश्रय मिला है।

शब्दालंकार :

अनुप्रास :- काव्य में श्रुति-मधुर वर्णों के उचित विन्यास से अनुप्रास उत्पन्न होता है। वर्ण-साम्य को अनुप्रास कहते हैं।[१६६] अनुप्रास से काव्य में एक विशिष्ट प्रकार का नादात्मक संगीत उत्पन्न होता है। तदर्थ काव्य में नाद का महत्व असंदिग्ध है। प्राय: रससिद्ध कवियों के काव्य में वर्णों का नाद-सौन्दर्य स्वत: समाहित रहता है। श्रुति-मधुर शब्दों की आवृत्ति से संवेदनशील सहृदय पाठक का मन आह्लादित हो उठता है। रससिद्ध कवि द्विवेदी जी की काव्य-भाषा में वर्णों की प्रसंगानुकूल सुगठित संयोजना से पाठक के सम्मुख काव्य का मर्म एक विशिष्ट संगीतात्मक सृष्टि लिए हुए उद्घाटित होता है। द्विवेदी जी के काव्य में भी अनुप्रास का सौंदर्य बिखरा पड़ा है। यह उल्लेखनीय है कि उनके काव्य में अनुप्रास केवल नादात्मक संगीत ही उत्पन्न करने के हेतु प्रयुक्त नहीं हुआ, अपितु अर्थ-प्रकाशिनी क्षमता भी उसमें निहित है। पूर्ववर्ती पृष्ठों में यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि द्विवेदी जी की शब्द-संपदा विपुल है। तदर्थ उनका मर्म समझकर प्रसंगानुकूल उचित व सार्थक शब्दों का प्रयोग करने में वे सिद्धहस्त हैं। कवि में अनुप्रासात्मक वर्ण-विन्यास म के प्रति मोह नहीं रहा, अपितु श्रुति-मधुरता, लयात्मक गत्यात्मकता एवं नाद-सौंदर्य की सृष्टि के लिए अनुप्रास का प्रयोग हुआ है। इससे काव्य-मर्म को समझने में भी सहायता प्राप्त होती है। मनीषी कवि ने अत्यंत कुशलता के साथ कृत्रिमता से बचते हुए अनुप्रासों का विधान किया है। यही कारण है कि उनके नैम नैसर्गिक सौंदर्य से आकृष्ट होकर सामान्य पाठक भी अत्यन्त सरलता के साथ काव्य-पंक्तियाँ कंठस्थ कर सकता है। उचित अनुप्रासों के विधान से काव्य की लोकप्रियता में अधिक सहायता मिली है। नाद-सौंदर्य में अभिवृद्धि करनेवाले अलंकारों

में अनुप्रास के अतिरिक्त पुनरुक्तिप्रकाश, वीप्सा, यमक आदि भी आ जाते हैं। अनुप्रास के प्रमुख भेद हैं : छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास लाटानुप्रास तथा अन्त्यानुप्रास।

छेकानुप्रास :

अनेक व्यंजनों(वर्णों) की एक बार आवृत्ति को छेकानुप्रास कहते हैं।[१६७] छेकानुप्रास के कतिपय उदाहरण उद्धृत हैं -

(१)" तन-मन में प्राणों में मेरे
नवजीवन का आनन्द भरो।"[१६८]

(२)" गालों पर गुदना गुदा हुआ है नीला।"[१६९]

(३)" श्याम नीलिम तरु, लता, तृण,
सुरभि मधु-पुरित दिशा मग।"[१७०]

(४)" मेरे यौवन के निकुंज में, आज खिले हैं नव -नव फूल।"[१७१]

(५)" लाज तजकर आज प्रियतम
खुले दिन में द्वार आओ।"[१७२]

उक्त उद्धरणों में प्रथम में 'न' की आवृत्ति, द्वितीय में 'ग' की, तृतीय में 'म' और 'त' की, चतुर्थ में 'न' की और पंतम में 'ज' और 'द' की आवृत्ति हुई है। इससे लयात्मक गति एवं नाद-सौंदर्य की सृष्टि हुई है। छेकानुप्रास के ऐसे अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

वृत्यानुप्रास :

जहाँ वृत्तिगत अनेक व्यंजनों(वर्णों) या एक व्यंजन की अनेक बार आवृत्ति हो वहां वृत्यानुप्रास होता है।[१७३] अथवा रसाभिव्यंजन करनेवाली वर्ण-रचना वृत्ति है और उसके अनुकूल वर्णों का प्रकट न्यास वृत्यानुप्रास है।[१७४] काव्य में नाद-संगीत का चमत्कार वृत्यानुप्रास की नियोजना में सविशेष रहता है। द्विवेदी जी के काव्य में भी वृत्यनुप्रास का सौंदर्य दृष्टिगत किया जा सकता है। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं-

(१)* खादी में कितने ही दलितों के
दग्ध हृदय की दाह छिपी,
कितनों की कसक कराह छिपी
कितनों की आहत आह छिपी ।*१७५

(२)* निर्झर झर झर झरता रहता
अपनी अनंत धुन में विलीन,
खग कुल कुलकुल कर कह जाता
अपनी सुख-दुख गाथा नवीन ।*१७६

(३) झूमी प्रतिपल गजगति बनकर
झूमी प्रतिपल गज-रथ चढ़कर
झूमी पग-पग में मग-मग में
जगमग मनकर, रण में बढ़कर ।
\+ + +
घन घन घन घन घंटा बोले
झन झन झन झन बाजी रणभेरी ।*१७७

प्रथम उद्धरण में द, क, ह के बारम्बार प्रयोग से, द्वितीय में झ, न, क, ल के और तृतीय में झ,म,प,ग,ज,घन,झन के प्रयोग से न केवल सांगीतिक गत्यात्मकता ही व्यंजित हुई है अपितु भावाभिव्यंजना में प्रांजलता भी आई है । शब्द के धनी कवि के इंगित पर जैसे वर्ण नृत्य कर रहे हों ऐसा प्रतीत होता है । ऐसे अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

लाटानुप्रास :

लाटानुप्रास का प्रयोग प्राय: नहीं हो पाया है ।

श्रुत्यनुप्रास :

जहाँ पर किसी छंद या पंक्ति में एक ही स्थान, जैसे- कंठ, तालु आदि से उच्चरित वर्णों की अनेक बार आवृत्ति होती है वहाँ श्रुत्यनुप्रास होता है ।*१७८

द्विवेदी जी के काव्य में कहीं-कहीं श्रुत्यनुप्रास के उदाहरण मिल जाते हैं। यथा-

'खग कुल कुल कुल कर कह जाता।'

यहां पर 'क' वर्ग के वर्णों की आवृत्ति के कारण एक विशेष चमत्कार आ जाता है।

अन्त्यानुप्रास :

जहाँ पद अथवा पाद के अंत में स्वर के साथ ही यथावस्थ(स्वरयुक्त अक्षर का पूर्ववत् रहना) व्यंजन की आवृत्ति हो वहाँ अन्त्यानुप्रास होता है।[१७९] आधुनिक हिंदी की राष्ट्रीय काव्य-धारा के कवियों में अन्त्यानुप्रास के प्रयोग की प्रवृत्ति को प्रचुर मात्रा में दृष्टिगत किया जा सकता है। द्विवेदी जी के काव्य में भी यह प्रवृत्ति देखी जाती है। कतिपय उदाहरण निम्नांकित हैं -

(१) 'बंदिनी माँ को न भूलो,
राग में जब मत्त झूलो,
अर्चना के रक्त कण में, एक कण मेरा मिला लो।'[१८०]

(२) 'मन में दीन-दुखी की ममता,
हममें हो मरने की क्षमता,
मानव मानव में हो समता,'[१८१]

(३) 'मन में नूतन बल संवारता
जीवन के संशय भय हरता,
वृद्ध वीर बापू वह आया
कोटि-कोटि चरणों को धरता।'[१८२]

(४) 'वज्रपात हो, बिजली कड़के
थर-थर कांपे सब जल-थल
अतल वितल पाताल रसातल
भूतल निखिल सृष्टि-मंडल।'[१८३]

प्रथम और द्वितीय उद्धरणों में तीनों पंक्तियों में अन्त्यानुप्रास दृष्टिगत होता है। तृतीय उद्धरण में प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ पंक्तियों में अन्त्यानुप्रास है तो चतुर्थ उद्धरण में अंतिम तीन पंक्तियों में अन्त्यानुप्रास है। इन उद्धरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने अन्त्यानुप्रास के प्रयोग में विविधता लाने का प्रयास किया है जिससे अभिव्यक्ति में नवीनता बनी रहे। यह उल्लेखनीय है कि केवल तुक मिलाने के उद्देश्य से ही कवि अन्त्यानुप्रास का प्रयोग नहीं करता, अपितु साहजिक रूप से शब्द-चयन की विशेषता के कारण अन्त्यानुप्रास में सजीवता दृष्टिगत होती है।

पुनरुक्तिप्रकाश :

वर्ण्य विषय को अधिक रुचिकर बनाने के लिए जहाँ एक ही शब्द की उसी अर्थ में पुनरुक्ति हो वहाँ पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार होता है।[१८४] प्रस्तुत अलंकार के कतिपय उदाहरण निम्नांकित हैं -

(१) तृण-तृण कण-कण में आकर्षण
नीलम दूर्वा उग आई।[१८५]

(२) वन-वन उपवन-उपवन डोलो,
सुमन- सुमन में नवमधु घोलो।[१८६]

(३) घर घर में ही कौतूहल था
दर दर में उनकी चर्चा थी।
स्वर स्वर में, उनका नाम चढ़ा
उर उर में उनकी अर्चा थी।[१८७]

(४) युग-परिवर्तक, युग-संस्थापक
युग-संचालक, हे युगाधार।
युग-निर्माता, युग-मूर्ति तुम्हें
युग-युग तक युग का नमस्कार।[१८८]

उक्त उद्धरणों में क्रमशः तृण-तृण, कण-कण, बन-बन, उपवन-उपवन, सुमन-सुमन, घर-घर, दर-दर, स्वर-स्वर, उर-उर, युग-युग जैसे शब्दों की उसी अर्थ में पुनरुक्ति

दृष्टिगत की जा सकती है । ये शब्द भावाभिव्यक्ति को रुचिकर तो बनाते हैं । साथ ही चतुर्थ उद्धरण में 'बापू' के युगव्यापी ~~व्यक्तिमत्व~~ व्यक्तित्व को बड़ी दृढ़ता से अभिव्यक्त करते हैं । अन्त में एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है जिसमें छेकानुप्रास वृत्यनुप्रास, अन्त्यानुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश जैसे सभी शब्दालंकार प्रायः दृष्टिगत किये जा सकते हैं :-

'आज की उषा नवीन, आज की दिशा नवीन,
आज किरन किरन थिरक रही ले प्रभा नवीन,
आज श्वास है नवीन, आज की पवन नवीन,
प्राण प्राण में पराग, सौरम, स्पन्दन नवीन ।'[१८६]

<u>वीप्सा :</u>

जहाँ सार्थक शब्दों की आवृत्ति आश्चर्य, आदर, घृणा आदि आकस्मिक भावों को प्रकट करने के लिए होती है, वहाँ वीप्सा अलंकार होता है ।[१९०] वीप्सा के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं -

(१) " रह गये देखते खड़े सभी
चिंतित से, जड़ित, चकित, विस्मित ।
कितने दुर्जय निर्मम हैं ये
यह भी विभूति प्रभु की विकसित ।"[१९१]

(२) " चलती दो चरण कभी द्रुतगति,
गंभीर धीर पद, चिन्ताकुल,
तो कभी, जड़ित-सी, चित्रित-सी,
स्थिर हो जाती पथ पर व्याकुल ।"[१९२]

उक्त दोनों उद्धरणों में आश्चर्यान्विति तथा स्तंभित मनःस्थिति के भाव दृष्टिगत होते हैं ।

उपर्युक्त अर्थालंकारों एवं शब्दालंकारों के विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कुल मिलाकर कवि ने भावाभिव्यक्ति की सटीकता, सजीवता एवं

शीघ्र प्रेषणीयता को लक्ष्य करके अलंकारों का प्रयोग किया है । आचार्य केशव आदि रीतिकालीन कवियों की अलंकारवादी व्यामोहक प्रवृत्ति में पड़े बिना भावानुभूति की तीव्रता की नाद मधुर सफल अभिव्यक्ति के लिए अलंकारों का प्रयोग किया है ।

(८) बिंब-विधान :

बिंब का सामान्यत: अर्थ किया जाता है : प्रतिमा, छाया, प्रत्यंकित रूप या चित्र ।[१६३] बिंब केवल दृश्यगत नहीं होते अपितु समस्त इंद्रियों द्वारा संग्राह्य होते हैं । अपनी मूलभूत समस्त विशेषताओं को सहृदय के अंतस्तल में प्रतिफलित कर देनेवाली बिंब-योजना ही सार्थक सिद्ध होगी । बिंब ग्रहण की प्रक्रिया में सर्वाधिक महत्वपूर्ण शर्त रागात्मक संश्लेषण की है । राग ही एक ऐसा तत्व है जो प्रतिपाद्य विषय और उसे सटीक व रमणीय बनानेवाले बिंब में अन्विति उत्पन्न करता है । काव्य के अंतर्गत बिंब-एक विशिष्ट रूप एवं परिस्थिति-मन:स्थिति का द्योतन करता है। तीव्रतम भावों की चित्रात्मक स्पष्टता, तथा रमणीयता की प्रतीति कराने में बिंब ही प्रभविष्णु होता है । बिंब सजीव एवं संक्षिप्ति लिये हुए होने चाहिए जिससे प्रतिपाद्य विषय सम्यक् रूपेण ग्रहण हो सके ।

आधुनिक हिन्दी कविता में बिंब बहुचर्चित विषय रहा है । वस्तुत: यह अंग्रेजी के 'इमेज' के रूपान्तर के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है । कवि की काव्यगत सत्यानुभूतियों का समस्त इंद्रियों, मन एवं प्राणों से आस्वादन करने की प्रक्रिया में बिंब विशेष सहायता पहुंचाते हैं । प्राय: सभी कवि अपने कथ्य को सुचारुरूप से एवं अनुभूति की गहराइयों को सहृदय तक संप्रेषित करना चाहते हैं । तदर्थ बिंबों का सहारा वे प्राय: लेते हैं । पांचों इंद्रियों के धर्मानुसार रूप, शब्द, गंध, स्पर्श एवं शब्दगत बिंब[१६४] का ही अधिक उपयोग होता रहा है । पं० सोहनलाल जी ने भी अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए एवं छायावादी शैली पर गीत-रचना में उपर्युक्त द्विविध प्रकार के बिंबों का प्रयोग किया है । इनके प्रभेदों के अनावश्यक विस्तार का विवरण अभीष्ट न होने के कारण उनके उदाहरण मात्र देना पर्याप्त होगा । रूपगत बिंबों के

प्राकृतिक, मानवीय, तथा वातावरण प्रधान प्रभेदों के ~~उक्त~~ उद्धरण निम्नांकित हैं :-

रूपगत बिंब :(क) प्राकृतिक बिंब :

(१) 'नवपल्लव नव सुमन खिल उठे
नव मधु नव सौरभ छाया,
प्रणय-कुहुक कोकिल की लेकर
नव वसंत जग में आया ।' १९५

(२) 'स्वर्ण की सरिता बही है
आज अति सुंदर मही है,
सुखद पीतांबर लहरता किस
रसिकमणि का विचारो ।
जरा सरसों तो निहारो ।' १९६

(ख) मानवीय बिंब :

(१) 'मेरे यौवन के निकुंज में
आज खिले हैं नव नव फूल,
बकुल, मुकुल, पाटल, शेफाली,
रजनीगंधा सौरभ मूल ।' १९७

(२) ' तुम यही लावण्यमय
आरुण्यमय हो पद्मलोचन,
खिल उठे जैसे चमा से
हों अभी सुंदर विलोचन,
सुखद कितने आज तुम
शरदेन्दु से हे तापमोचन ।' १९८

(३) 'देखा क्या ऐसा रूप कहीं,
जो समा न सकता आंखों में ।' १९९

(४)* अधरों में मृदु मधुर नाम बन,
प्राणों में बनकर नव स्पंदन,
रोम-रोम में मृदुल पुलक बन,
नवजीवन, सरसो ।
नव नव रूप धरे चिर सुंदर
मेरे अंग बसो ।* २००

(ग) वातावरण प्रधान :

(१)* कानन-कानन उपवन-उपवन
खिले सुमनदल, सुरभित कण-कण,
वह कैसी मदभरी पिकी ने
पंचम तान उठाई,
मधुकर, आज वसंत बधाई ।* २०१

(२)* शत शत खिलें रूप के दल समुज्ज्वल,
मधु गंध से हों सुगंधित दिशि पल,
पाषाण निर्झर बने हों अचल चल,
उर-उर जगे कामना एक मंगल ।
सुरभि बने सद्म ।
खुल कर खिलो पद्म ।* २०२

(३)* अमराई में अभिनव पल्लव
फुलवाई में मधुमय कलरव,
नीरव पिक का स्वर गूंज उठे
सुमनों में भर आये मरंद
अलि । रचो छंद ।* २०३

शब्दगत बिंब :- शब्दगत बिंब के प्रमुख दो भेद समझे गये हैं। (क) प्राकृतिक पदार्थों से उद्भूत और (ख) मानव-उद्भूत ।

दोनों प्रभेदों के तात्विक विवेचन की अपेक्षा उनके उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं -

(क) प्राकृतिक पदार्थों से उद्भूत बिंब :

(१) "निर्झर झर-झर झरता रहता
अपनी अनंत धुन में विलीन,
खग कुल कुल कुल कर कह जाता
अपनी सुख-दुख गाथा नवीन ।"[२०४]

(२) "प्रिय, नव पल्लव खिले डाल में
लोहित रजत, स्वर्ण द्युतिमान्,
लदी आम्र के ताम्र वृंत में
हीरों की बौरें छबिमान ।"[२०५]

(ख) मानव-उद्भूत बिंब :

(१) "इस लाली से जग की लाली,
इस लाली से से सब हरियाली,
इस लाली से श्री श्रीवाली,
हैं अंग अंग में अंगराग,
उनके चरणों का अरुण राग ।"[२०६]

(२) "मधुर मिलन उत्कंठा जागी,
चकई चली स्नेह में पागी,
निष्ठुर है प्रिय की अवहेला ।
फिर आई संध्या की बेला ।"[२०७]

स्पर्शगत बिंब :- रूपगत एवं शब्दगत बिंबों के अतिरिक्त द्विवेदी जी के काव्य में स्पर्शगत

बिंब के कतिपय छंद भी प्राप्त होते हैं । उसके भी दो एक उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं -

(१) " अपनी वीणा के तारों से
पूछो क्यों यह स्वर्ण विहान ?
मुझे बुलाते रहते हो क्यों
उठा निरंतर आकुल तान ।" २०८

(२) " मेरी वीणा की स्वर लहरी ।
आ तारों पर सो जाना
बिलग हो सको फिर न कभी
प्राणों में प्राण समा जाना ।" २०९

'चित्रा' और 'वासन्ती' जैसी साहित्यिक रचनाओं के अतिरिक्त उनकी राष्ट्रीय रचनाओं में भी बिंब-विधान की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है । विशेषकर परतंत्र भारत के दयनीय वर्तमान का सटीक चित्र उपस्थित करते हुए वे अनेक बिंबों को प्रस्तुत करने का यत्न करते हैं -

" ये नभ-चुम्बी प्रासाद भवन,
जिनमें मंडित मोहन कंचन,
ये चित्रकला-कौशल-दर्शन,
ये सिंह-पौर, तोरन, वन्दन,
ये रंग-महल, ये मान-भवन
ये लीलागृह, ये गृह उपवन,
ये क्रीडागृह, अन्तर प्रांगण,
रनिवास, खास, ये राज-सदन ।" २१०

ऐसे अन्य उदाहरण 'भैरवी' से 'गांवों में' शीर्षक कविता में तथा 'युगाधार' में 'हलधर से, 'मजदूर', 'सेवाग्राम' आदि शीर्षक कविताओं में प्राप्त हो सकते हैं ।

प्रतीक विधान :

'प्रतीक' का शब्दार्थ है वह रूप जो अपने मूलरूप में पहुँच सके। अर्थात् प्रतीक ऐसा संकेत है जो मूल का स्थानापन्न होता है, उसका परिचायक होता है। बोध्य, विषय का बोध कराते हुए भी उससे भिन्न होता है।[२११] प्रतीक रूपक अन्योक्ति एवं रूपकातिशयोक्ति से अपनी निरपेक्षता के कारण भिन्न है। रूपक में उपमान एवं उपमेय में अभिन्नत्व होते हुए भी दोनों का पृथक अस्तित्व आभासित होता है किन्तु प्रतीक उपमेय का कथन ही नहीं करता, वह अपने पूरे परिवेश को प्रस्तुत करता है। अन्योक्ति में प्रस्तुत का बोध होने पर अप्रस्तुत का त्याग हो जाता है परन्तु प्रतीक में अप्रस्तुत का त्याग नहीं होता, अन्ततोगत्वा प्रस्तुत और अप्रस्तुत का तादात्म्य हो जाता है। प्रतीक में प्रस्तुत की अपेक्षा अप्रस्तुत की ही प्रधानता रहती है क्योंकि अप्रस्तुत या प्रतीयमान अर्थ की अभिव्यंजना ही प्रतीक का लक्ष्य होता है। रूपकातिशयोक्ति में साधर्म्य पर आधारित स्थूल चित्र की प्रधानता रहती है तो प्रतीक में निरपेक्षता अधिक रहती है और प्रभाव-साम्य की प्रधानता रहती है। उक्त अलंकारों की तुलना में प्रतीक का क्षेत्र अधिक व्यापक है। उसमें लक्षणा एवं व्यंजना शब्द-शक्तियों की अतिशयता के कारण अनेक भावों की व्यंजना करने की क्षमता होती है। 'जातीय अनुभव की शक्ति, व्यवहारगत निश्चित अर्थ-परंपरा तथा भाव-विकास के मान्य स्तर- ये वे तत्व हैं जिन पर प्रतीक का प्रतीकत्व आधारित है।'[२१२] प्रत्येक राष्ट्र में अपनी सभ्यता एवं संस्कृतिगत परंपराओं के अनुसार प्रतीक निर्मित होते रहते हैं। जिनका काव्य में प्रयोग होता रहता है। वस्तुत: वे ही प्रतीक श्रेष्ठ माने जा सकते हैं जो सहृदय पाठक के मस्तिष्क में प्रवर्तमान संस्कारगत या कल्पनागत बिंबों को उद्‌बुद्ध कर सके। इतना ही नहीं भाव-संप्रेषण के द्वारा पाठक की सुप्त भावानुभूतियों को सतेज कर कवि के अभिप्रेत का सुचारु रूप से रसास्वादन करा सके।

छायावादी कवियों की तरह द्विवेदी जी ने प्रतीक-योजना की विशेष प्रवृत्ति नहीं अपनायी है। यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि द्विवेदी जी का काव्य-सर्जना का

लक्ष्य ही जनवादी रहा है । तदर्थ वे काव्य की कलागत पच्चीकारी में उतनी रुचि नहीं रखते जितनी छायावादी कवि रखता है । हाँ, सहज भावाभिव्यक्ति में यदि कलागत सौन्दर्य निखर आता है तो यह उन्हें मान्य है । अलंकारों, बिंबों या प्रतीकों की सायास योजना उन्हें मान्य नहीं । उनकी राष्ट्रीय रचनाओं में प्राय: प्रतीकों की योजना नहीं मिलती । फिर भी यह उल्लेखनीय है कि कतिपय राष्ट्रीय प्रतीकों के महत्व एवं उनमें निहित भावनाओं को उन्होंने अनेक रचनाओं के द्वारा अंकित किया है । `खादीगीत` चरखे के प्रतीक के रूप में तथा राष्ट्रीय उत्कर्ष के प्रतीक के रूप में लिखा गया ऐसा ही गीत है । `राष्ट्र ध्वज` के प्रतीक को लेकर उसमें निहित अनेक भावनाओं और देश की आशा-आकांक्षाओं का विभिन्न रचनाओं के द्वारा अंकन किया गया है । `जय राष्ट्रीय निशान`, `तिरंग ध्वज`, `राष्ट्र ध्वजा` जैसी रचनाएँ इसका प्रमाण हैं । वस्तुत: `चित्रा` और `वासन्ती` जैसी छायावादी शैली पर लिखित उनकी साहित्यिक कृतियों में प्रतीक-योजना अपेक्षाकृत अधिक मिलती है । तदर्थ इन कृतियों में प्रयुक्त कतिपय प्रतीकों पर विचार किया जा रहा है । कवि ने मधुऋतु, मधुप, फूल, आदि प्रतीकों का अधिकतर संयोग श्रृंगार के वर्णन में प्रयोग किया है । मधुऋतु(वसन्त) आनंद-उल्लास एवं प्रणयी भावों के उन्मेष की प्रतीक है । शत-शत फूलों का प्रफुल्लित हो जाना भावों की प्रफुल्लता का प्रतीक है । अपनी स्निग्धता एवं कोमलता के कारण वातावरण को सुरभियुक्त एवं रमणीय बना देने का फूलों में गुण होता है । ऐसे चित्ताकर्षक वातावरण में मधुप उन प्रसूनों का परागपान करने के लिए लुब्ध हो जाते हैं । इन रूढ़ प्रतीकों का कवि ने अपने प्रिय-पात्र के सान्निध्य से उद्बुद्ध मादक भावावेगों को अभिव्यक्त करने में प्रयोग किया है ।-

(१)" गाओ मधुप गान ।

हो विश्व पतझर में फिर, नवल प्रात,
मधु ऋतु खिले, खिल उठें कोटि जलजात,
नवदल, सुरभि नव, नव मधु, नवल वात
युग युग विरस, फिर, सरस हो उठे प्राण ।" २१३

(२) ' अलि । रचो छंद
मधु के मधुऋतु के सौरभ के,
उल्लास भरे अवनी नभ के,
जड़जीवन का हिम पिघल चले
हो स्वर्णभरा प्रतिचरण मंद ।
अलि । रचो छंद ।' २१४

१. 'मधुप', 'पतझर', 'मधुऋतु', 'जलजात' से दो भिन्न प्रकार के भावों की प्रतीति होती है । 'पतझर' शुष्कता एवं निराशा का प्रतीक है किन्तु उसे दूर करने का संकेत कर मधुऋतु, जलजात मधुप आदि प्रतीकों से मृदु, मधुर, मादक भावों की प्रतीति कराई गई है जो प्रिय-पात्र के सान्निध्य से कविके मनोजगत में उद्बुद्ध हो गये हैं । तदर्थ फिर सरस हो उठे प्राण ' उक्ति के द्वारा कवि प्रिय के सान्निध्य-सुख का मधुपवत् पान करने की तीव्रता का संकेत करते हैं ।

२. प्रिय-पात्र के सान्निध्य से वासन्ती सुषमा युक्त कवि का मन अवनी-अम्बर में समा जानेवाले असीम उल्लास के साथ मधु-मरंद का आकंठ पान करना चाहते हैं जिससे तारल्यपूर्ण चैतन्य की प्रतीति हो सके । 'अलि' के प्रतीक के द्वारा कवि उक्त सभी प्रकार की भावानुभूति कराने का यत्न करते हैं । वासन्ती परिवेश में अलि के गुंजारव- 'अलि । रचो छंद' का उल्लेख कर कवि चैतन्य की सर्जन शक्ति का परिचय कराते हैं । यहाँ 'अलि' के प्रतीक में सन्निहित लक्षणा और व्यंजना की अतिशयता के कारण अनेक भावों की प्रतीति होती है । प्रस्तुत और अप्रस्तुत का तादात्म्य परिलक्षित होता है । अन्योक्ति की तरह यहाँ प्रस्तुत का बोध हो जाने पर अप्रस्तुत का त्याग करने की स्थिति नहीं है । अपनी निरपेक्षता के कारण प्रतीक का पृथक् अस्तित्व बना रहता है और प्रभाव-साम्य प्रतीत होता है ।

उक्त दो छंदों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि द्विवेदी जी ने भी

श्रृंगारपरक ऐसे गीतों में प्रतीकों की योजना की है । संयोग-श्रृंगार के अतिरिक्त वियोग-श्रृंगार के प्रसंग में कवि का विरह विदग्ध मन `मरुथल`, `प्रलय घन`, गोधूली, `संध्या` आदि प्रतीकों का सहारा ढूंढता हुआ, अपनी असह्य व्यथापूर्ण भावोर्मियों को व्यंजित करता है । `वासन्ती` नामक काव्य-कृति में से ऐसे अन्य उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं । जैसे -

(१) `मैं विरस मरुथल विकल हूँ।` - पृ० ३६

(२) `आज प्रलय-घन घिरते देखा ।` - पृ० ५६

(३) `आई फिर संध्या की बेला
गोधूली है पथ में छाई ।` - पृ० ६८

इस तरह द्विवेदी जी ने भी विषयानुरूप प्रतीकों का प्रयोग करके अपनी दक्षता की प्रतीति कराई है। किन्तु यह कहना अनुचित न होगा कि कवि के समस्त काव्य में प्रतीक-योजना की, छायावादी कवियों की तरह, प्रवृत्ति परिलक्षित नहीं होती ।

बिंब-विधान के संदर्भ में यह अवश्य कहा जा सकता है कि कवि के काव्य में प्रसंगानुरूप बिंबों की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है । निजी भावों को मूर्तता प्रदान करने के लिए कवि बिंबों का सहारा लेता है जिससे कवि का सत्य पाठक तक सुचारु-रूप से संप्रेषित हो जाता है ।

(५) छन्द-योजना

शब्द नाद ब्रह्म का प्रतीक है और साहित्य उसी शब्द के द्वारा नादब्रह्म की(आनंद की) साधना करता है । सार्थ शब्दों के समुचित प्रयोग के द्वारा साहित्यकार पाठक को उसी आनन्द की साधना में समभागी करता रहता है । यद्यपि वह शब्द-साधना के मार्ग में गद्य-पद्यात्मक रूपों का सर्जन करता है, तथापि पद्यमय शब्द-साधना में सर्जक एवं

भावक दोनों को एक विशिष्ट आनंद की अनुभूति होती है क्योंकि पद्य (कविता) के लिए लयबद्ध होना अनिवार्य है । गद्य की अपेक्षा पद्य में यही लयात्मकता नाद-सौंदर्य उत्पन्न करती है । अत: कविता में अन्य तत्वों की तरह नाद-सौंदर्य को भी अनिवार्य तत्व माना गया है । मानव की भाव तरंगों में दोलायमान होने की जो बलवती इच्छा दृष्टिगत होती है उसकी तृप्ति साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा कविता के द्वारा ही सविशेष होती है । इसका प्रमुख कारण पद्य में लयात्मक शब्द-योजना है । प्रदीप्त भावना सहजरूप से लयबद्धता व तालबद्धता का आश्रय लेती है । तभी तो परापूर्व से निरपवाद कवि निजी भावानुभूतियों को छन्दोबद्ध करता आया है । क्रौंच-वध के प्रसंग पर आदि कवि की प्रदीप्त भावना का छन्दोबद्ध अभिव्यक्तिकरण इसका प्रमाण है । नाद और लययुक्त शब्दक्रम में एक विलक्षण सामर्थ्य है जो मन को अधिक संवेदनशील बनाते हुए तरल आनंदानुभूति की ओर अभिमुख करता है । अत: नाद-सौंदर्य की प्राप्ति के लिए तथा कवि निजी सत्यानुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए लययुक्त छन्द का बाहरी परिधान स्वीकार करता रहता है । "इस दृष्टि से छन्द आत्मानुभूति के अभिव्यंजन का नर्तन है ।"[२१५] जीवन की भाव तरंगों के समान छन्द की गति-तरंगें कविता की सप्राणता की द्योतक हैं ।[२१६] इस तरह कविता के लिए छन्दोबद्ध होना आवश्यक समझा जा सकता है । यद्यपि आधुनिक युग में छन्दों के बन्धन से मुक्त होने की प्रवृत्ति अधिक दीखती है तथापि मुक्त छंदों में भी एक विशिष्ट लय एवं गति निहित है । इस संदर्भ में डा० भगीरथ मिश्र ~~के अभिमत~~ का अभिमत उल्लेखनीय है, ' मुक्त छंदों को कुछ लोगों ने छन्दहीनता का रूप समझा, जो नितान्त भ्रान्त धारणा थी । मुक्त छंद अतिनियमित छंदों से अधिक मुक्त हैं, पर वे छंद ही हैं और नियमबद्ध भी । उनमें गति है जो नियमित छंदों की एक या अनेक लयों पर आधारित है ।[२१७] छायावादी कवि पन्त जी भी इसी विचार का समर्थन करते हुए कहते हैं, ' कविता और छन्द के बीच बडा घनिष्ठ सम्बंध है । कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृत्कंपन, कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है ।---

छन्द अपने नियंत्रण से राग को स्पंदन, कंपन तथा वेग प्रदान कर निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल, सजल, ~~कर~~ कलरव भर उन्हें सजीव बना देते हैं।--- छन्दोबद्ध शब्द चुम्बक के पार्श्ववर्ती लौह चूर्ण की तरह अपने चारों ओर एक आकर्षण क्षेत्र (Magnetic field) तैयार कर लेते हैं।"[२१८] इससे सिद्ध होता है कि कविता का लयमान होना अनिवार्य है जिससे विशिष्ट नाद-सौंदर्य प्रकट होता है। अतः कविता को छन्दोबद्ध(तुकान्त, अतुकान्त या मुक्त छंद के रूप में) होना पड़ता है।

पूर्ववर्ती पृष्ठों में निर्दिष्ट किया जा चुका है कि बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ काल में एक ओर पाश्चात्य संस्कृति और विचारधारा के संपर्क से तथा दूसरी ओर सांस्कृतिक पुनरुत्थान के परिणामस्वरूप भारतीय जीवन के समस्त क्षेत्रों में परिवर्तन होने लगे थे। इससे आधुनिक हिन्दी साहित्य भी असम्पृक्त न रह सका। उसमें भी भाव, विचार, विषयवस्तु, भाव-प्रकाशन शैली तथा काव्य शिल्प विधान में पर्याप्त परिवर्तन हुए। प्राचीन प्रतिकूल रूढ़ियों एवं मान्यताओं के प्रति विद्रोह और नवीनता की कामना बढ़ने लगी। भारतेन्दु युग एवं द्विवेदी युग इस परिवर्तन के संक्रान्तिकाल थे। द्विवेदी युग के पश्चात् स्वतंत्रता आंदोलन से उद्भूत नूतन चेतना ने हिंदी साहित्य में स्वच्छंदता का एक प्रकार से वातावरण ही निर्मित कर दिया। हिन्दी के कवियों ने काव्य कला के आंतर्बाह्य विधानों को ही बदल दिया। छन्द और शैली में भी पर्याप्त परिवर्तन होने लगे। एक ओर परंपरागत छन्दों में अनेक प्रयोग करके नये छंदों का निर्माण किया गया तो दूसरी ओर मुक्त छंद की प्रवृत्ति भी अपनायी गई।

खड़ी बोली के काव्य का क्रमिक विकास देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इन कवियों ने मात्रिक छंदों में ~~अनेकविध नूतन प्रयोग किये हैं। यद्यपि वर्णिक छंदों के भी प्रयोग मिलते हैं तथापि~~ मात्रिक छन्दों के विस्तृत प्रयोगों के परिमाण को देखकर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि खड़ी बोली की प्रकृति मात्रिक छन्दों के अधिक अनुकूल पड़ती है। इन छंदों की विपुलता एवं विविधता जितनी आधुनिक युग की खड़ी बोली में प्राप्त होती है उतनी पूर्ववर्ती काल में कभी नहीं रही। मात्रा का सम्बंध शब्द के ह्रस्व-दीर्घ उच्चारण

से है इसी से छन्द की लय का निर्माण होता है । यद्यपि मात्रिक छंदों का विकास एवं विस्तार आधुनिक युग में अधिक हुआ है, तथापि संस्कृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में तथा हिंदी साहित्य के इतिहास के प्राय: सभी कालों में उन छंदों के प्रयोग पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं । इस युग में उक्त छंदों में किये गये अभिनव प्रयोगों के संदर्भ में डा० पुत्तूलाल शुक्ल कहते हैं, `इस युग में प्राचीन छंदों को लेकर भी प्राचीन छन्दों के नियम को अनिवार्यत: नहीं माना गया है, कवि सुविधानुसार यति, गति और आकार में परिवर्तन-परिवर्धन करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त करता रहा । इसके अतिरिक्त कुछ वृत्तों को मात्रिक रूप देकर प्रचारित किया गया । कुछ कवियों ने प्राचीन मात्रिक लयों के आधार पर स्वेच्छा से नवीन छंदों की रचना की और सुविधानुसार उनका क्रम निश्चित कर लिया । यह नवीनता गीतों और स्फुट कविताओं में अधिक दिखाई पड़ती है, प्रबन्ध काव्यों में तो अधिकांशत: निश्चित छंदों का ही प्रयोग हुआ है । नवीन क्रम से आयोजित छन्द, जिनमें कई छन्दों का मिश्रण है, विषम छन्दों के अंतर्गत माने गये हैं, यद्यपि ये विषम छन्द निश्चित छन्दों के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। विषम छन्द के दो भेद हैं -(१) निश्चित विषम छन्द और (२) मुक्त छन्द'।[२१६]

पंडित सोहनलाल द्विवेदी की काव्य-साधना का युग भी उपरिनिर्दिष्ट काव्य-चेतना की आधारभूमि पर प्रतिष्ठित है, जिसका उल्लेख यथास्थान किया जा चुका है । उन्हें इसी युग के अपने पूर्ववर्ती राष्ट्रीय कवियों, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त प्रभृति के छन्दगत विविध प्रयोगों की विरासत प्राप्त हुई है । साथ-साथ छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद के अनेक कवियों की छन्दगत स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति से भी प्रेरणा प्राप्त हुई है । अर्थात् मात्रिक छंदों में किये गये अभिनव प्रयोगों तथा मुक्त छंद के निर्माण की प्रवृत्ति से उन्हें पर्याप्त सहयोग प्राप्त हुआ है । उनके समस्त काव्य का अनुशीलन करने पर यह प्रतीत होता है कि उन्होंने भी छन्दों में अभिनव प्रयोग करने की उपर्युक्त प्रवृत्ति को भलीभांति अपनाया है । यह ध्यातव्य है कि द्विवेदी जी का कवि कभी किसी साहित्यिक वाद में प्रतिबद्ध होकर काव्य-सर्जना नहीं करता रहा, इस पर पूर्ववर्ती पृष्ठों में उल्लेख किया जा चुका है । वह तो अपने निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति करने की अदम्य इच्छा से सहज-सरल भावाभिव्यक्ति करता रहा

है । कवि की यही मनोवृत्ति छन्द-प्रयोग में भी दृष्टिगत होती है । उनके छन्द-प्रयोग में नाविन्य और वैविध्य पाया जाता है । छन्दों के प्राचीन नियमों का हठग्राही परिपालन किये बिना अपने भावों की गरिमा एवं विषय-वस्तु के अनुरूप छन्दों में वे आवश्यक परिवर्तन-परिवर्धन करके छन्द-प्रयोग करते रहे । सहज रूप से अपने भावों के संप्रेषण में उपयोगी सिद्ध होने वाली लयात्मक धुनों के आधार पर छन्द का स्वरूप निर्मित करते हुए काव्य-सर्जना करते रहे । इससे प्रकट है कि उनके काव्य में छन्दगत परंपरानुगामिता दृष्टिगत नहीं होती । वस्तुत: वे अपने भावों में नाद-सौन्दर्य की वृद्धि करने के उद्देश्य से चयन करते रहे । ~~वस्तुत: वे अपने भावों में नाद--सौंदर्य की वृद्धि करने के उद्देश्य से~~ तभी तो उनके काव्य में लयात्मक प्रवाहमयता, एवं प्रभावोत्पादकता अधिक दीखती है । उनकी 'खादीगीत' जैसी अनेक रचनाओं की लोकप्रियता के अन्य अनेक कारणों में भावानुरूप शब्द एवं छन्द चयन भी है । राष्ट्रीय काव्यधारा के प्राय: सभी कवियों ने राष्ट्रीय जन-मानस को जागृत एवं वीरोत्साहपूर्ण भावों से ~~उनके~~ उद्वेलित करने के उद्देश्य से प्राय: अभिनव प्रयोग युक्त मात्रिक छन्दों ~~का~~ पर आधारित सतुकान्त काव्य रचनाएं की हैं । मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्णशर्मा 'नवीन', माखनलाल चतुर्वेदी प्रभृति इसके प्रमाण हैं । सियारामशरण गुप्त ने तो इसके अतिरिक्त अतुकान्त एवं मुक्त छंदों का भी प्रयोग किया है । छायावादी कवियों ने स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति अपनाते हुए छान्दसिक प्रयोगों में विशेषकर मुक्त-छंद युक्त काव्य-सर्जन का एक आंदोलन-सा उपस्थित कर दिया ।

उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में पंडित सोहनलाल द्विवेदी के काव्य में उपर्युल्लिखित तीनों प्रकार के छंद-प्रयोगों में से कितने प्रकार के छंद-प्रयोगों को दृष्टिगत किया जा सकता है ? द्विवेदी जी के काव्य का अनुशीलन करने पर यह प्रतीत होता है कि अधिकांशत: उन्होंने अन्त्यानुप्रासयुक्त सतुकान्त काव्य छंदों का ही प्रयोग किया है । हाँ, इन छन्दों में प्राचीन नियमावली का पालन किये बिना आधुनिक युगीन उपर्युक्त अभिनव-प्रयोग के प्रभाव में वे छन्दगत नूतन प्रयोग करते रहे हैं । प्राय: उनकी समस्त काव्य-

कृतियों में तुकान्त छन्दों का प्रयोग अधिकांशत: मिलता है। केवल 'वासवदत्ता' ही एक ऐसी कृति है जिसमें प्रयोगार्थ मुक्त छंद का प्रयोग किया है। साथ ही कहीं-कहीं अतुकान्त छंद भी दृष्टिगत होते हैं। कवि द्वारा प्रयुक्त तुकान्त -अतुकान्त एवं मुक्त छंदों के प्रयोगों पर दृष्टिक्षेप करने के पूर्व इस बात को स्पष्ट कर देना समीचीन लग रहा है कि द्विवेदी जी छन्दों के परंपरागत शास्त्रीय नियमों में आबद्ध होकर छंद-योजना के व्यामोह से प्राय: दूर रहे हैं। उनका प्रमुख लक्ष्य शास्त्रोक्त विधिविधानयुक्त छन्दयोजना करना कभी नहीं रहा। सहज-सरल भावाभिव्यक्ति में उन्हें जो लय विशेष अनुकूल लगी है उसे ही उन्होंने अपनाया है। तभी तो एक ही छंद-प्रयोग में भावानुसार अनेक छंदों का मिश्रण भी उनकी कविता में मिलता है। अत: उनकी छन्द-योजना का पूर्णतया शास्त्रीय अध्ययन करते हुए छन्दगत विविध बारीकियों को ढूंढना अनावश्यक होगा। यह उल्लेखनीय है कि छन्द भावों को लय या नाद विशेष के साथ समायोजित करने के सांचे हैं। कवि अपनी सुविधानुसार उन सांचों का प्रयोग करता है तथा सुविधा या आवश्यकतानुसार काव्याभिव्यक्ति के लिए नये सांचों का निर्धारण करता है। अत: नाद-सौंदर्य के साथ भावाभिव्यक्ति ही उसका मूल प्रतिपाद्य है, सांचों में फिट करने की मनोवृत्ति से भावाभिव्यक्ति की गुणवत्ता बाधित हो सकती है। इस प्रकार छन्दयोजना पर काव्य की सम्प्रेषणीयता के सहायक साधन के रूप में विचार किया जा सकता है। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर सोहनलाल द्विवेदी के काव्य की छन्द योजना को अध्ययनगत सुविधा के लिए मोटे तौर से तीन प्रमुख शीर्षकों के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है -

(१) तुकान्त छन्द
(२) अतुकान्त छन्द
और (३) मुक्त छन्द

(१) अन्त्यानुप्रास या तुकान्त छन्द :

छन्दोयति या चरणान्त में निश्चित क्रम से स्वरव्यंजनमूलक ध्वनिसमूह के

साम्य-संयोग को अंत्यानुप्रास कहते हैं। सामान्य भाषा में इसे तुक या काफ़िया कहते हैं।"२२० संस्कृत के स्तोत्र-साहित्य में अन्त्यानुप्रासमूलक अष्टक अधिक मिलते हैं। अपभ्रंश-साहित्य में इसका प्रयोग पर्याप्त मात्रा में मिलता है। नाथों और सिद्धों की कविता में अन्त्यानुप्रास युक्त छन्द-प्रयोग अधिक मिलते हैं। हिन्दी में यही काव्य-परंपरा चली आई है। आधुनिक युग में भी अन्त्यानुप्रासयुक्त मात्रिक छन्दों का प्रयोग हुआ है। विशेषकर राष्ट्रीय कवियों ने इस परंपरा का अनुमोदन करते हुए अन्त्यानुप्रास-मूलक छन्दों में अपनी भावाभिव्यंजना जारी रखी। जनवादी काव्य में यह प्रवृत्ति सविशेष दृष्टिगत होती है। सामान्य पाठक या श्रोता (कवि-सम्मेलनों या सभा-सोसायटियों में एकत्रित जन-समुदाय के रूप में) का मानसिक स्तर काव्य के गूढ़ अर्थ-बोध की अपेक्षा साहजिक रूप से नाद-सौंदर्य को शीघ्र ग्रहण करता है। अत: नाद की रमणीयता के कारण पूर्णतया अर्थ-बोध को ग्रहण किये बिना भी वह कविता का रसास्वादन करता रहता है। अन्त्यानुप्रासयुक्त कविता अपने नाद-सौंदर्य के कारण इस प्रक्रिया में अत्यधिक सहायभूत होती है। मात्रिक छन्दयुक्त अन्त्यानुप्रास की कविता की अपेक्षा गीत में भावानुभूति की तीव्रता के साथ-साथ संगीत की प्रधानता रहती है। अत: गीतों में अन्त्यानुप्रास परम आवश्यक समझा गया है। चरणान्त में तुक के कारण एक प्रकार की नादात्मक अनुगुंज उत्पन्न होती है जो पाठक या श्रोता को आनंदानुभूति में सहायक सिद्ध होती है। अन्त्यानुप्रास के कारण पाठक को एक प्रकार का विश्राम मिलता है और लयात्मक आवृत्तिजन्य श्रम का परिहार भी हो जाता है। तदर्थ आगामी चरणों का सोल्लास स्वागत करने के लिए तत्पर रहता है। अनुप्रासयुक्त छन्द-योजना में सिद्धहस्त कवि की मन:स्थिति के संदर्भ में डा० पुत्तूलाल शुक्ल लिखते हैं, -"जिस कवि के हृदय में शब्द-संगीत एवं भाव का प्रगाढ़ सम्मि- सम्मिलन हो जाता है, उसकी लेखनी से अयत्नज अन्त्यानुप्रास प्रस्फुटित होते जाते हैं। इस विधान से कवि की उद्वेलित भावधारा में एक संयम आ जाता है, फलत: उसके रसकला एवं संगीत का धरातल एक-सा रहता है।"२२१ कहना न होगा कि पंडित सोहनलाल द्विवेदी के काव्य में प्रयुक्त

------ अन्त्यानुप्रास युक्त छंद एवं गीत अयत्नज एवं शब्द-संगीत से परिपूर्ण हैं। उनके प्राय: समस्त काव्य में अन्त्यानुप्रास की प्रवृत्ति दृष्टिगत की जा सकती है। उनके छन्द या गीत स्थूल परंपरा का पालन मात्र नहीं करते। वे एक ओर लक्ष्यपूर्ति-मूलक उत्साहपूर्ण भाव-तरंगों का निर्वहण करते हैं तो दूसरी ओर सीधी, सरल अभिव्यक्ति की नादात्मक क्षमता लिये हुए हैं। उनके छन्दों में भाव और भाषा, शब्द और संगीत का अपूर्व सामंजस्य परिलक्षित होता है। पूर्व निर्दिष्ट किया गया है कि जनवादी कवि द्विवेदी जी का पाठक सर्व-साधारण जन-समाज है। तदर्थ अपनी उत्ताल तरंग युक्त भाव राशि को बे सहज-सरल अभिव्यक्ति प्रदान करते आये हैं। कला-सौष्ठव पर विचार करते हुए अद्यावधि यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि उनकी शब्द-योजना, बिंब एवं प्रतीक योजना एवं वर्णन शैलियों में कवि सहज, सरल अभिव्यक्ति को ही प्राधान्य देता आया है। अन्त्यानुप्रास युक्त छंदों में भी यही प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। जनवादी काव्य-रचना के उद्देश्य के कारण उन्होंने अधिकांशत: तुकान्त छन्द-~~रचना-के-उद्देश्य-के-कारण~~ योजना को ग्रहण किया है। तुकान्त मात्रिक छन्दों के प्रयोग में पर्याप्त वैविध्य रखा गया है। गीतों में भी विशेषकर लोकगीतों की धुन पर अनेक अभियान गीतों की उन्होंने रचना की है। उनमें भी वैविध्य दृष्टिगत होता है। इन छंदों और गीतों के वैविध्यपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं :-

बत्तीस मात्रिक चरणवाले छंदों के तुकान्त प्रयोग :

प्रथम प्रकार (१) 'चल पड़े जिधर दो डग मग में
चल पड़े कोटि पग उसी ओर,
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि
गड़ गये कोटि दृग उसी ओर।*[222]

(२) खादी के धागे धागे में
अपनेपन का अभिमान भरा,
माता का इसमें मान भरा
अन्यायी का अपमान भरा।*[223]

(३) 'कल हुआ तुम्हारा राजतिलक
बन गये आज ही वैरागी ?
उत्फुल्ल मधु-मदिर सरसिज में
यह कैसी तरुण अरुण आगी ?
क्या कहा, कि ---,
'तब तक तुम न कभी,
वैभव सिंचित श्रृंगार करो'
क्या कहा, कि ---,
'जब तक तुम न विगत-
गौरव स्वदेश उद्धार करो ।'
माणिक मणिमय सिंहासन को
कंकड़ पत्थर के कोनों पर,
सोने चांदी के पात्रों को
पत्तों के पीले दोनों पर ।'[२२४]

(४) ' साम्राज्यवाद के ध्वंस-गान
तुम जग जीवन के नव-विहान ।'[२२५]

प्रथम दो उद्धरणों में कवि ने बत्तीस चरणों को १६-१६ की यतियों के साथ ~~रक्खा~~ रखा है । और प्रथम छंद प्रयाणगीत की धुन पर रखा गया है । अत: उसमें गति लाने के लिए यति रहित शब्द चयन किया गया है । जबकि द्वितिय छन्द में भिन्न प्रकार की यति है । यद्यपि इसे भी बिगुल की धुन पर बजाया जाता रहा किन्तु यह प्रयाणगीत न बन पाया । कवि ने प्राय: अधिकांश रचनाओं में उक्त दो छंदों की-सी पद्धति अपनाई है। अत: ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं । तृतीय उदाहरण में एक नूतन प्रयोग दृष्टिगत होता है । इसमें छंद के चरणों का सांचा वही बत्तीस मात्रा का है तथापि 'क्या कहा कि-' वाले चरणों में भाव की संप्रेषणीयता में एक निश्चित वजन(Force)

लाने के उद्देश्य से कवि ने सोलह मात्रा के एक चरण को ६-१० मात्राओं की यति में विभक्त कर दिया है । यहाँ केवल छंद-वैविध्य उपस्थित करने का कवि का मोह नहीं दीखता । ~~स्कप~~ इसमें भावानुसार यति-गति के साथ अभिव्यक्ति करने के उद्देश्य से छंद वैविध्य को कवि ने अपनाया है । तभी तो सिन्धान्त -कथन के पश्चात् तुरन्त कवि वही १६-१६ के चरणों का प्रयोग करता दीखता है । साथ ही यति और गति के आधार पर इसी छंद की प्रथम चार एवं अंतिम चार पंक्तियों में भी भिन्नता दृष्टिगत की जा सकती है । प्रथम चार पंक्तियों में ओजगुण प्रधान पदावली का प्रयोग एवं आरोहात्मक लय दृष्टिगत होती है । जबकि अंतिम चार पंक्तियों में भाव बदल जाने पर समतल गति है । चतुर्थ उदाहरण में तो अन्य उदाहरणों की तुलना में केवल दो ही चरणों में उक्त छंद-प्रकार को प्रयोग में लाया गया है । साथ ही दोनों चरणों में अन्त्यानुप्रास भी रखा है ।

<u>द्वितीय प्रकार</u> : (१)" तेरे भ्रू-भ्रंगों से सीखा करता
है प्रलय नृत्य करना,
तेरी वाणी से सीखा करता
काल ताल अपनी भरना,
तेरी उमंग से सिन्धु तरंगें
सीखा करती हैं उठना,
तेरे मानस से सीखा करता
गगनांगन विशाल बनना,
मेरे असीम । सीमा मत बन
तेरी ही पृथ्वी आसमान ।
ओ नौजवान ।
ओ नौजवान ।" २२६

इसमें बत्तीस मात्रिक चरणवाले छंद को वैविध्य के साथ तोड़ा है । एक ही छंद में कहीं

२०-१२ की यति मिलती है तो कहीं १६-१६ पर ।अंतिम दो पंक्तियों में पुन: १६मात्राओं को ८-८ के दो चरणों में विभक्त किया है । यहाँ कवि तरुण को कर्तव्य-मान कराते ओजपूर्ण भावों को यति, गति के वैभिन्य के साथ एक निश्चित वजन (Force) से व्यक्त करने का प्रयास करते हैं । तरुणों को उद्बोधन के लिए अंतिम पंक्तियों में जान-बूझकर लघुचरण पसंद किये गये हैं । उपरिनिर्दिष्ट समस्त उदाहरणों के विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि छंद के सांचे को एक माध्यम के रूप में ग्रहण करते हुए तथा भावानुसार यति-गति एवं चरणों की मात्राओं का न्यूनाधिक नाप रखते हुए एक विशिष्ट नाद-सौंदर्य की सृष्टि करता है । भावों की समुधुर, सरस एवं सटीक प्रेषणीयता को कवि निरन्तर महत्व देता रहता है और तदनुसार छंदों का प्रयोग भी ।

चौबीस मात्रिक चरणवाले छन्दों के प्रयोग :

(१) "भारतीय सुसंस्कृति के गर्व
और अभिमान ।
बुद्ध की सद्बुद्धि के कल्याण-
मय आख्यान ।"२२७

(२) "यह स्वतंत्रता की वर्ष गाँठ है प्रथम प्रथम,
मैं कैसे इसे मनाऊँ मन में है दिग्भ्रम ।"२२८

दोनों उदाहरणों में चौबीस मात्राओं के छंद आते हैं। किन्तु दोनों के प्रयोग में वैभिन्य है । प्रथम उदाहरण में १६-८ मात्राओं की यति दो चरण हैं जबकि द्वितीय उदाहरण में २४ मात्रा का एक चरण है। दोनों उदाहरणों में प्रत्येक २४ चरण में अंत्यानुप्रास है। भाव-वैभिन्नय के कारण कवि ने छन्दों के प्रयोग में विविधता उपस्थित की है। प्रथम उदाहरण में कवि प्रसाद जी की प्रशस्ति में उनके विशिष्ट लक्षणों, जो युगीन परिस्थितियों में आवश्यक समझे गये हैं, को उद्घाटित करते हुए उनके प्रति समादर व्यक्त करना चाहते हैं तदर्थ एक विशेष नाद उत्पन्न करते हुए निजी भावों की अभिव्यक्ति करते हैं। अत: विशेष यति-गति के अतिरिक्त द्वित वर्णों का प्रयोग भी करते हैं जिससे ओजपूर्ण भाव एक वजन(Force) के साथ प्रकट होता है और आवश्यक नाद-सौंदर्य की सृष्टि

होती है । द्वितीय उदाहरण में इससे भिन्न स्थिति है। प्रथम पंक्ति में प्रथम वर्षगाँठ का उत्साह तो है किंतु बापू के आकस्मिक निधन के कारण शोकमग्न कवि का मन शोक-समुद्र में विनिमज्जित हो गया है। इस प्रकार एक साथ द्विविध भावानुभूति के कारण जो दिग्भ्रम उत्पन्न हुआ है उससे कवि के चिन्तन में शैथिल्य आ गया है । कवि के द्वारा प्रयुक्त इस द्वितीय छंद में गति की शिथिलता देखी जा सकती है । यह शिथिलता उक्ति यति-प्रयोग एवं शब्द-चयन के द्वारा लाई गई है। प्रथम पंक्ति में उल्लास का भाव होने से यति रहित लयात्मक गति है किन्तु द्वितीय पंक्ति में अन्तर्यति का प्रयोग करके गति को रोकने का प्रयास किया गया है ।

ऐसे प्रयोग-वैशिष्ट्य के कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं किन्तु विवेचनगत सीमाओं के विचार से यहाँ विस्तार में जाना आवश्यक प्रतीत नहीं होता। छन्द-प्रयोग में यति-गति के अन्तर से नाद-सौंदर्य में भिन्नता या विशेषता लाने में कवि सिद्धहस्त कहा जा सकता है । इसके कारण काव्य के कला- सौष्ठव में वृद्धि को लक्ष्य किया जा सकता है । दूसरा उल्लेखनीय तथ्य यह है कि ये प्रयोग प्रयोगधर्मिता की मनोवृत्ति से प्रेरित नहीं हैं, कवि की निजी प्रकृति भी प्रयोगधर्मिता मात्र की नहीं है । किन्तु यति-गति तथा शब्द-योजना के विधान द्वारा नाद-सृष्टि में उसका असाधारण अधिकार दिखाई पड़ता है । कवि की अनुभूति अपने सहज प्रवाह के साथ एक विशेष मानसिक स्थिति के अनुसार परिचालित होती हुई नाद की सहज रूप में सृष्टि करती जाती है ।

तुकान्त छन्दों के अतिरिक्त उन्होंने गीतों की भी रचना की है जो तुकान्त होते ही हैं । तीव्रतम भावों की संप्रेषणीयता में संगीत तत्व सहज ही सन्निहित हो जाता है । कवि ने प्रायः दो प्रकार के गीतों की रचना की है -

(१) राष्ट्रीय गीत ~~और~~

और (२) प्रगीत ।

(१) राष्ट्रीय गीत :

स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लक्ष्य की पूर्ति के निमित्त मात्रिक छंदों के अतिरिक्त लोकधुनों पर व कतिपय राष्ट्रीय गीतों की रचना कवि ने की है। जन-जागरण के आंदोलन में जन-समाज की सांगीतिक अभिरुचि को ध्यान में रखते हुए प्रभात-फेरियों में गाये जानेवाले प्रयाण-गीतों के रूप में तथा बिगुल की धुन पर लिखे कतिपय गीतों की रचना कवि ने समय-समय पर की है। साथ ही कुछ अन्य विषयों पर लिखे गीत भी दृष्टिगत होते हैं। इस तरह उनके राष्ट्रीय गीतों को दो प्रकार में विभक्त किया जा सकता है। - (१) प्रयाण गीत और (२) अन्य गीत।

प्रयाण गीत :

(१)* न हाथ एक शस्त्र हो,
न साथ एक अस्त्र हो,
न अन्न, नीर वस्त्र हो,
हटो, नहीं
डटो वहीं,
बढ़े चलो
बढ़े चलो। [२२९]

(२)* जय राष्ट्रीय निशान।
जय राष्ट्रीय निशान।
जय राष्ट्रीय निशान।
लहर लहर तू मलय पवन में,
फहर फहर तू नील गगन में,
छहर छहर तू जग के आंगन में,
सबसे उच्च महान।
सबसे उच्च महान।
जय राष्ट्रीय निशान। [२३०]

उक्त दोनों प्रयाण गीतों में लयात्मक भिन्नता दृष्टिगत की जा सकती है। लोकधुन पर आधारित इन गीतों में एक विशिष्ट संगीतात्मक धुन(Rhythma) के कारण विशिष्ट नादात्मक अनुगुंज उत्पन्न हुई है। प्रथम गीत में ओजपूर्ण भाव को द्वित्वर्णों के प्रयोग के द्वारा व्यक्त किया गया है। जबकि द्वितीय गीत में प्रसाद गुण युक्त शब्दों का प्रयोग करके विशेष कर फहर-फहर, लहर-लहर, छहर-छहर शब्दों का अनुप्रासमूलक प्रयोग के कारण विशिष्ट नाद-सौंदर्य की सृष्टि हुई है। ये गीत प्राय: सत्याग्रहियों तथा जन-समाज के एक विशेष वृंद के द्वारा गाये जाते रहे हैं, अत: इनके द्वारा भावात्मक एकता प्राप्त होने में भी पर्याप्त सहयोग प्राप्त हुआ है। इस प्रकार प्रयाण गीतों में भी भावानुसार शब्द-चयन और गति की धुन पसंद की गई है।

अन्य गीत :

(१) "वंदना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो।
जब हृदय का तार बोले
शृंखला के बंद खोले
हों जहाँ बलि शीश अगणित, एक शिर मेरा मिला लो।" २३१

(२) "मातृ-मंदिर में चलो, प्रिय,
हो रही है आरती।
शंख-ध्वनि उठने लगी है,
दीप की लौ भी जगी है,
आज वीणापाणि ले वीणा
स्वयं झनकारती। ---मातृ मंदिर में" २३२

(३) "आज युद्ध की बेला।
बुझे मशाल न, तेल डाल लो
अस्त्र शस्त्र अपने संभाल लो,
हैं तोपें हुंकार भर रहीं
बापू बढ़ा अकेला। ---आज युद्ध" २३३

(४) " फूँकों शंख, ध्वजाएँ फहरें
चलें कोटि सेना, घन घहरें ।
मचे प्रलय ।
बढ़ो अभय ।
जय जय जय ।" [२३४]

प्रथम दो गीतों में भावों की तरलता एवं मधुरता दृष्टिगत की जा सकती है । 'वंदना के इन स्वरों में' पंक्ति में संगीत की शब्दावली में एक आरोह दृष्टिगत होता है जबकि द्वितीय गीत में समतल गति है । बलिदान की बात कहते हुए भी ओजमय अभिव्यक्ति की अपेक्षा वंदना की विनम्रता प्रकट हो रही है जो कवि का प्रतिपाद्य है । तृतीय और चतुर्थ गीतों में ओजमय उद्घोषकता है । भावानुसार संयुक्ताक्षर एवं कर्णकटु शब्द प्रयोग पर्याप्त गंभीर और वीरोत्साहपूर्ण नादात्मक अनुगुंज उत्पन्न कर देता है । उपर्युक्त गीतों की एक विशेषता यह है कि जहाँ कवि तरल, मधुर नाद की सृष्टि करना चाहता है वहाँ गीतों की लयात्मक गति मंद रखता है और ओजपूर्ण उद्घोषकता की सृष्टि के लिए कवि लयात्मक गति तेज रखता है और अपेक्षाकृत छोटे चरण पसंद करता है । गीतों की प्राय: सभी विशेषताएँ उक्त गीतों में मिलती हैं । प्राय: प्रथम पंक्ति को बारम्बार दुहराया जाता है । अर्थात् प्रत्येक अंतरे के पश्चात स्थायी या ध्रुव -पंक्ति को दुहराया गया है । इन उदाहरणों में कवि के प्रसंगोचित राष्ट्रीय भाव प्रभावोत्पादक ढंग से अभिव्यक्त हुए हैं । भावों की प्रवाहमयता लयात्मक गति एवं नादसौंदर्य को भलीभाँति प्रकट करती है । गीत की प्रकृति के अनुसार कवि ने तुकान्त छोटे छन्द को ही पसंद किया है । संगीत के लयात्मक आवर्तनों की नादात्मक अनुगुंज अनुप्रासयुक्त शब्द-चयन में देखी जा सकती है । पाठक या श्रोता इस नाद-ध्वनि में अपनी सांगीतिक रुचि को तुष्ट करता हुआ गीत का रसास्वादन करता रहता है, अत: ऐसे गीत उसे शीघ्र ही अनायास कंठस्थ हो जाते हैं ।

(२) प्रगीत :

राष्ट्रीय गीतों के अतिरिक्त कवि ने छायावादी गीतशैली पर अनेक गीतों

की रचना की है जो `चित्रा` और `वासन्ती` जैसी कृतियों में संकलित किये गये हैं। उनके ये गीत छायावादी विषयवस्तु-सम्पन्न गीति काव्य की कोटि में आते हैं। अनावश्यक विस्तार भय से गीतिकाव्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं उसकी सभी विशेषताओं का विवरण प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है। किन्तु इतना अवश्य कहा जायगा कि द्विवेदी जी रचित इन गीतों में उनका स्व-अधिकाधिक स्वीय रूप में अभिव्यक्त हुआ है। इन गीतों में पांडित्य-प्रदर्शन एवं सिद्धान्तीकरण को अवकाश नहीं है। कवि अपनी विशुद्ध भावात्मक निजी अनुभूतियों को असीम कल्पना-प्रवणता के साथ भावुक स्वर में अन्तर्निनादिनी सांगीतिक लहरों के माध्यम से अबाध मुक्तता लिए व्यक्त करता रहता है। छायावादी कवियों की तरह द्विवेदी जी ने भी इन गीतों में अपने प्रियतम के प्रति शृंगार-रस की उभयपक्षीय वैयक्तिक भावधारा को लयात्मक अभिव्यक्ति दी है। आत्मानुभूतिमूलक इन गीतों में कवि के अंतर की सुषमायुक्त स्फूर्ति तथा वेदनायुक्त आकुलता सहज ही प्रस्फुटित हुई है। इन गीतों के कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं -

(१) `बरसे स्नेह सुधा की धारा

खिलें मिलन से नयन कमल-दल,
बाहुलता कुसुमित, सुरभित-पल,
अधरों के मादक प्यालों से
ढले नवल- मधु-प्याला। --- बरसे [२३५]

(२) ` मैं मंदिर का दीप तुम्हारा।
जैसे चाहो, इसे जलाओ
जैसे चाहो, इसे बुझाओ
इसमें क्या अधिकार हमारा ? --- मैं [२३६]

(३) ` कोई रह रह उठता पुकार-
क्यों किया किसी से अरे प्यार।

ममता भी होती है चंचल,
विश्वास छिपाये रखता छल,
यह था न जानता मैं दुर्बल
अब तो जीवन है बना भार। --- कोई[२३७]

उक्त प्रगीतों में उपरिनिर्दिष्ट गीतिकाव्य की प्राय: सभी विशेषताएँ लक्ष्य की जा सकती हैं। प्रणय से सम्बद्ध कवि की वैयक्तिक सुख-दुखमूलक द्विविध भावोर्मियों को अनुप्रासयुक्त कोमल पदावली का प्रयोग करके गीतात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। शब्दों का चयन एवं प्रयोग बड़ा ही कलात्मक है। भावानुरूप भाषा-प्रयोग कवि के काव्य की महती विशेषता है।

(२) अतुकान्त छन्द-योजना :

पूर्ववर्ती पृष्ठों में यह निर्दिष्ट किया गया है कि आधुनिक हिंदी खड़ी बोली की प्रकृति मात्रिक छंदों के अधिक अनुकूल पड़ती है, अत: आधुनिक युग में मात्रिक छंदों का अधिकाधिक प्रयोग हुआ। संस्कृत के कतिपय वृत्तों को मात्रिक रूप देकर प्रचारित किया गया। संस्कृत के कतिपय अतुकान्त वृत्तों-मन्दाक्रान्ता, पृथ्वी, वसन्ततिलका, शिखरिणी, मालिनी आदि, का भी उपयोग आधुनिक हिंदी कवियों ने किया है। आधुनिक युग में संस्कृत साहित्य की भांति अतुकान्त छन्दों का प्रयोग नवीन रूप में हुआ है। समास, सन्धि एवं प्रत्ययों का संगुंफन संस्कृत वृत्त के चरण को एक मोहक संगीत-मालाकार बना देता है।[२३८] श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'प्रियप्रवास' की रचना संस्कृत के अतुकान्त वृत्तों में की है जो हिंदी में संस्कृत वृत्तों का प्रथम प्रौढ़ प्रयोग है। इस परंपरा का विकास श्री मैथिलीशरण गुप्त ने किया। माइकेल मधुसूदन दत्त के अतुकान्त वृत्तों में रचित 'मेघनाथ वध' का गुप्त जी ने हिंदी-अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'सिद्धराज', 'जयभारत' (युद्ध खण्ड) तथा 'यशोधरा' (सन्धान) में अतुकान्त छन्द का प्रयोग किया है। ऐसे छन्दों का प्रयोग कथा-वर्णन, बाह्य-चित्रण एवं ओजमय उदात्त भावों की अभिव्यक्ति के लिए अधिक किया जाता है। पं० सोहनलाल द्विवेदी ने भी प्रसंगवश ओजपूर्ण भावों की सफल अभिव्यक्ति

के लिए अतुकांत छंदों का प्रयोग किया है किन्तु ये संस्कृत के वर्ण वृत्त नहीं हैं । ऐसे छंदों का प्रमाण बहुत अल्प है । उदाहरणार्थ कतिपय छंद उद्धृत हैं -

(१)* महाकाल की प्रलय-रात्रि में
तांडव कर रे एकाकी,
तेरी शक्ति, भक्ति भर दे
नत जग, तेरी जय जय बोले ।*२३९

(२)* तुममें ही हो गये वतन के
लिए अनेकों वीर शहीद,
तुम-सा तीर्थ-स्थान कौन
हम मतवालों के लिए पुनीत ।*२४०

(३)* झुलसें जिसकी ज्वालाओं में
अगणित अन्यायों के वितान ।
रूढ़ियाँ, अंध-विश्वास घोर
जड़ जीवन का रे तिमिर चीर ।*२४१

(४)* कवि कालिदास की वरवाणी,
गाती थी गौरव कल्याण
नव मेघदूत के छन्दों ने
मकरन्द मेघ था बरसाया ।*२४२

प्रथम तीन उद्धरणों में विविध प्रसंगों में कवि ने ओजगुण प्रधान भावों की अभिव्यक्ति की है । प्रथम में तरुण की अतुलनीय शक्ति का संकेत है, द्वितीय में अनेक वीर शहीदों की पुनीत भूमि हल्दीघाटी का वीरों के लिए प्रेरणा-स्थल के रूप में उल्लेख है, तो तृतीय में नवयुग के कवि की चेतना को जगाते हुए कुछ ऐसी काव्य-रचना के लिए उसका आह्वान किया गया है जिससे प्रेरणा प्राप्त कर युगीन अगणित अन्यायों

के वितान जलाकर भस्त कर दिये जायँ । चतुर्थ उद्धरण में बाल-वर्णन का प्रसंग है । प्रसाद गुणायुक्त इस प्रसंग में श्रुति-मधुर वर्णों का प्रयोग कर कवि ने अपने भाव व्यक्त किये हैं । इन छंदों में अन्त्यानुप्रास या तुक नहीं मिलता है तथापि कवि ने भावों की अबाध गति के लिए पूर्णक एवं लयात्मक यति का सहयोग लिया है ।

अतुकांत छंदों के उपर्युक्त उदाहरणों के संदर्भ में अनुशीलन के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि विशिष्ट वृत्तों एवं मुक्त छंदों के अंतर्गत कवि ने अतुकान्त छन्दों का प्रयोग किया है जो प्रसंगानुकूल भावों की सफल अभिव्यक्ति करते हैं । किन्तु यह अवश्य कहना चाहिए कि अतुकान्त छंद-प्रयोग की कवि की प्रवृत्ति नहीं है । तदर्थ ऐसे उदाहरण अत्यल्प हैं । ऐसे छंद-प्रयोगों में कवि की रुचि प्राय: नहीं दीखती है । अब कवि के द्वारा प्रयुक्त मुक्त-छंद पर विचार किया जा रहा है ।

(३) मुक्त छन्द-योजना :

मुक्त -छंद-प्रयोग को प्राय: भ्रान्त रूप में समझा गया है । इसका प्राय: यही अर्थ समझा जाता रहा है कि काव्य की छन्द-बन्धन से पूर्णतया मुक्ति। यद्यपि इसमें छन्द के अतिशय बन्धनों से मुक्ति मिलती है, तथापि जैसा कि पूर्ववर्ती पृष्ठों में निर्दिष्ट किया गया है मुक्त छंदों में भिन्न प्रकार से नाद-सौंदर्य उत्पन्न किया जाता है । कवियों ने भावानुसार एवं सुविधानुसार यति रखते हुए मुक्त छंद में कहीं- कहीं अन्त्यानुप्रास का भी प्रयोग करना उचित समझा है । इसका यह अर्थ न लिया जाय कि सतुकान्त छन्दों की तरह मुक्त छंदों में भी अन्त्यानुप्रास का प्रयोग किया गया है । इस संदर्भ में डा० पुत्तूलाल शुक्ल का अभिमत द्रष्टव्य है, -"मुक्त छन्द के कवियों ने भी अन्त्यानुप्रास की गरिमा का रहस्य समझा है । अन्त्यानुप्रास के कारण कविता के रूप-सौष्ठव, चरणानुबन्ध, भावसम्पूर्णता तथा संगीतात्मकता की सृष्टि होती है । अन्त्यानुप्रास से मुक्त छंद की प्रसारयुक्त पंक्तियों के आवर्तन एवं संपूर्णता की सूचना मिलती है और एकरसता भी समाप्त होती है, अत: मुक्त छंद के कवि भी अपनी भाषा

~~अपनी-मनका~~ को इस विशेष अलंकार से सुशोभित करते हैं। यह आवश्यक नहीं कि सभी मुक्त कविताओं में अन्त्यानुप्रास का प्रयोग हो, पर जिन कविताओं में इसका प्रयोग होता है, उनके पदानुबन्धन एवं लयानुशासन में इस शोभन व्यवस्था के कारण पुष्टि एवं दीप्ति आ जाती है।[२४३] `वासवदत्ता` के अन्तर्गत कवि के द्वारा प्रयुक्त मुक्त छंद के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं :-

(१) वासवदत्ता नत चरणों में
मस्तक धर
हृदय धर
जीवन धर
प्राण धर
जड़-सी बनी बैठी वहीं,
बोल कुछ पायी नहीं,
अर्चना अचल बनी,
वंदना सफल बनी,
हो गई मौन, कह पाई कुछ बात नहीं ?[२४४]

(२) यों ही, प्रतिस्पर्धा चला करती थी दिन-रात,
किसके गृह होंगे यह अतिथि आज ?
गौतम थे
तरुण, अरुण-करुण श्री से वरुण सम
कान्तिमान, तेजमान ;
कितनी ही सुंदरियाँ, देख-देख दिव्यरूप
होतीं बलिहार श्रीचरणों में तथागत के।[२४५]

(३) फूट-फूट रोती रही अपने दुर्भाग्य पर,
विनय पर, अनुनय पर, आग्रह अनुरोध पर,
अपने दुर्बोध पर।[२४६]

(४) आज इन्हें छोड़ दूँ,
प्रण के बंध तोड़ दूँ,
रण की गति मोड़ दूँ,
तो क्या होगा नहीं विश्वासघात ?
मरण करूँगा वरण,
न धरूँगा यह अयश चरण ।[२५७]

१. उद्धरण में कवि ने मुक्त-छंद के प्रयोग में भी अन्त्यानुप्रास का ठीक-ठीक प्रयोग किया है । वासवदत्ता की भावात्मक स्थिति की गरिमा व्यंजित करने के लिए कवि की उद्दीप्त भावधारामानो मुक्त छंद में भी अन्त्यानुप्रास की नादयुक्त परिणति स्वीकार करती है । उदात्त भावाब्धि की तरल तरंगों में वासवदत्ता की एक ओर शारीरिक जड़वत स्थिति और दूसरी ओर अंतरजगत् की भावविभोरता में वाणी की ~~तरल-तरंगों-में-बरबस~~ अवरुद्ध स्थिति का चित्रांकन करने में कवि की कलम ने अनायास ही अन्त्यानुप्रास को अपनाया हो ऐसा प्रतीत होता है । दूसरे शब्दों में कवि ने अंतर्बाह्य नाद-सौंदर्य को अभिव्यंजित करने के लिए मुक्त छंद का अन्त्यानुप्रास युक्त भाषा का प्रयोग किया है जिससे भाव पुष्टि के साथ-साथ छन्दगत दीप्ति आ गई है ।

२. उद्धरण अन्त्यानुप्रास रहित मुक्त छंद का है । इसमें कवि अन्त्यानुप्रास के बंधन से मुक्त हुआ है किन्तु प्रसंगानुरूप भाव-गरिमा को व्यंजित करने के लिए कवि ने सानुनासिक एवं अनुस्वार युक्त विशिष्ट शब्दावली का उचित प्रयोग करके छंद में लयात्मक नाद-सौंदर्य की सृष्टि की है । 'तरुण-अरुण-करुण-वरुण' जैसे नादयुक्त शब्दों का प्रयोग तथा 'सुंदरियाँ, श्रीचरणों में आदि अनुस्वारयुक्त शब्दों का प्रयोग इसका प्रमाण है ।

-३. उद्धरण में मुक्त छंद का एक विशेष प्रयोग दृष्टिगत होता है । इसमें अन्तर्-नुप्रास एवं अन्तर्यति का कवि ने साग्रह प्रयोग किया है । अपने प्रणय-निवेदन में असफलता प्राप्त करने पर वासवदत्ता अपने दुर्भाग्य को कोसती हुई जो अनुताप व्यक्त करती है उसे वाणी दी गई है । इस परिस्थिति में व्यक्ति रुक-रुक कर अपनी व्यथा व्यक्त करता है।

अत: वाणी में धारावाहिकता नहीं होती । उसमें तुटाव होता है । कवि ने इस मनोवैज्ञानिक सत्य के आधार पर मुक्त छंद में अन्तर्यति एवं अन्तरनुप्रास को अपनाया है जो प्रसंगानुकूल है । इससे भावाभिव्यक्ति सटीक एवं सजीव बन पायी है ।

-४. उद्धरण में रसपरिवर्तन दृष्टिगत होता है । वीर रस से सम्बद्ध कर्ण की उत्साहपूर्ण उक्ति का यहाँ ~~प्रबल~~- प्रदर्शन हुआ है । ओजगुण संपन्न इस उक्ति में विविध भावों की क्षिप्र गति को इंगित करते हुए कवि ने एक ओर कर्ण कटु शब्दों (छोड़ दूँ, तोड़ दूँ, मोड़ दूँ) की आवृत्ति की है तो दूसरी ओर अनायास अन्त्यानुप्रास का भी प्रयोग हो गया है । इसके अतिरिक्त 'मरण, वरण, चरण' जैसे अनुप्रासयुक्त शब्दों के प्रयोग से एक प्रकार का नाद उत्पन्न हुआ है ।

अत: इससे निष्कर्ष निकलता है कि द्विवेदी जी ने मुक्त छंद का यद्यपि प्रयोग करके छन्द के बन्धन से मुक्ति का यत्न किया है तथापि अनुप्रास की गरिमा का रहस्य समझते हुए तथा छंद की लयात्मक अनिवार्यता के महत्व का परिपालन करते हुए यति एवं अन्त्यानुप्रास का भावात्मक निर्वहण में निजी सुविधानुसार प्रयोग करके नाद-सौंदर्य की सृष्टि के लक्ष्य की पूर्ति की है ।

निष्कर्ष :

कवि की समग्र छन्द-योजना के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि कवि छन्द-प्रयोग में स्वतंत्र है । निजी अनुभूतियों की सहज-सरल प्रेषणीय अभिव्यक्ति को प्राधान्य देते हुए नाद-सौंदर्य की वृद्धि के लिए छन्द-योजना की गई है ।

--

सन्दर्भ- सूची :

१- सं० धीरेन्द्र वर्मा, `हिन्दी साहित्य कोश` भाग-१, `काव्य` शीर्षक, पृ० २५१
२- प्रो० ललितमोहन अवस्थी, `वृद्ध अविस्मरणीय संध्या` (लेख) द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ, पृ० १५६
३- 'प्रभाती', `भावों की रानी से` (शीर्षक) पृ० २-३
४- श्री हरिप्रसाद शुक्ल, प्रेरणा के अनन्त स्रोत, (शीर्षक लेख) एक कवि एक देश, पृ० १४८
५- `प्रभाती` की सूचना से उद्धृत
६- वही ।
७- 'मुक्तिगंधा', `दिल्ली दरबार` (शीर्षक) पृ० ५४
८- 'प्रभाती', सूचना से उद्धृत ।
९- वही ।
१०- श्री हरिभाऊ उपाध्याय, `जनजागृति की कलाकृति भैरवी` (लेख), `भैरवी` में ~~लघर-`मूनसम्मेल`~~ संकलित समीक्षा एवं सम्मतियों से उद्धृत, पृ० ४ तथा `पूजागीत` परिचय, पृ० २
११- अमरबहादुर सिंह `अमरेश`, `काव्य के इतिहास पुरुष`, पृ० ४३ से उद्धृत ।
१२- डा० कमलकान्त पाठक, `मैथिलीशरण गुप्त, व्यक्ति और काव्य`, पृ० ६७५
१३- महावीरप्रसाद द्विवेदी, `रसज्ञ रंजन` सं० १९३६, पृ० ४६-४७
१४- डॉ. सुरेन्द्रनाथ सिंह, 'प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन'; पृ. ३३८
१५- वही पृ. ३३९
१६- भैरवी, `पूजागीत (शीर्षक) पृ० १
१७- `भैरवी`, `युगावतार गांधी` (शीर्षक) पृ० ३
१८- वही, `महर्षि मालवीय` (शीर्षक), पृ० ३९
१९- वही, `राणाप्रताप के प्रति` (शीर्षक), पृ० ३५
२०- वही, `तुलसीदास` (शीर्षक) पृ० ५०
२१- वही, पृ० ५५
२२- वही, `विप्लव गीत` (शीर्षक) पृ० १३०-१३१

२३- `प्रभाती`,`माताें की रानी से`(शीर्षक)पृ० २-३

२४- वही,`प्रयाण गीत`(शीर्षक)पृ०३१

२५- वही, ऐतिहासिक उपवास, (शीर्षक) पृ० ३७

२६- वही, व्रत समाप्ति,(शीर्षक) पृ० ४०

२७- वही, उठे मातृभाषा का मंदिर, (शीर्षक)पृ०७१

२८- पूजागीत, पृ० १२-१३

२९- वही, पृ० १५

३०- वही, पृ० २६

३१- वही, पृ० ३४

३२- वही, पृ० ४३

३३- वही, पृ० ५२

३४- वही, पृ० ७०-७१

३५- दृष्टव्य- युगाधार, वक्तव्य।

३६- वही, उगता राष्ट्र(शीर्षक) पृ० ३३

३७- वही, मजदूर,(शीर्षक) पृ० ४१

३८- वही,`हमको ऐसे युवक चाहिए`(शीर्षक) पृ० ४२

३९- वही, भारतवर्ष,(शीर्षक) पृ० ११६

४०- चेतना, `~~नव~~ नीराजना`(शीर्षक) पृ० १३

४१- वही, स्वतंत्रता के पुण्य पर्व पर`(शीर्षक) पृ० २७

४२- वही, मुक्तिपर्व(शीर्षक) पृ० ३५

४३- वही, उद्बोधन(शीर्षक) पृ० ४७

४४- वही, श्रद्धांजलि(शीर्षक) पृ० ५२-५३

४५- मुक्तिगंधा, युगबोध अभिशप्त (शीर्षक)पृ०११२

४६- वही, पृ० ११२

४७- वासवदत्ता, वासवदत्ता, उपाख्यान, पृ०२

४८- वही, भिक्षा-प्राप्ति,उपाख्यान, पृ० ५६

४९- कुणाल, ~~प्रबन्ध~~ प्रणाय-निवेदन, सर्ग, पृ० ४१-४३

५०- `विषपान`, विषपान`,सर्ग,पृ०४३

५१- वासन्ती, पृ० ४६

५२- वही, पृ० ८

५३- `भैरवी`, `खादीगीत`, (शीर्षक) पृ० ७

५४- वही, अनुनय, (शीर्षक) पृ० ७९

५५- प्रभाती, उमंग, (शीर्षक) पृ०७

५६- प्रभाती, `गांधी तीर्थ या भंगीबस्ती` (शीर्षक) पृ० ८४

५७- पूजागीत, पृ० ४५

५८- वही, पृ० ६३

५९- युगाधार, हलधर से (शीर्षक) पृ०३४-३५

६०- वही, मजदूर (शीर्षक) पृ० ४०

६१- चेतना, यह स्वतंत्रता की अरुण उषा (शीर्षक) पृ०३१

६२- वही, 'आज राष्ट्र के कण-कण को गांधी की मूर्ति करेंगे हम' (शीर्षक) पृ० ४३

६३- मुक्तिगंधा, जागरण गीत (शीर्षक) पृ० ३

६४- वही, ज्वाला मन्द न हो (शीर्षक) पृ० २१

६५- वासवदत्ता, एक बूंद, प्रत्याख्यान, पृ० ४१

६६- कुणाल, प्रणय-निवेदन, सर्ग, पृ० ४५

६७- विषपान, `विष` सर्ग, पृ० ३२

६८- `चित्रा`, ग्राम-बधू, (शीर्षक) पृ० ६

६९- भैरवी, गांवों में (शीर्षक) पृ० ६-१०

७०- वही, आजादी के फूलों पर (शीर्षक) पृ० ६७

७१- युगाधार, सेवाग्राम की आत्मकथा (शीर्षक) पृ०११

७२- मुक्तिगंधा, झण्डे फहरानेवालो, (शीर्षक) पृ० ४२-४३

७३- चित्रा, ग्रामकन्या, (शीर्षक) पृ० ८

७४- भैरवी, किसान, (शीर्षक) पृ० २०

७५- प्रभाती, उन्हें प्रणाम, (शीर्षक) पृ० ३०

७६- युगाधार, ओ नौजवान (शीर्षक) पृ० ५०

७७- चेतना, तुम्हें शपथ है(शीर्षक) पृ० १६-२०
७८- मुक्तिगंधा, मुक्तक(शीर्षक) पृ० २२
७६- वासवदत्ता, सरदार चूडावत, प्रत्याख्यान, पृ० २१-२२
८०- भैरवी, किसान, (शीर्षक) पृ० २०
८१- वही, गांवों में, (शीर्षक) पृ० १५
८२- वही, विप्लव-गीत(शीर्षक) पृ० १३०
८३- पूजागीत, पृ० १११
८४- चेतना, राष्ट्रदेवता, (शीर्षक) पृ० ७
८५- चित्रा, निमंत्रण (शीर्षक) पृ० १
८६- वही, लहरों के प्रति(शीर्षक) पृ० ५
८७- भैरवी, सना रहा हूँ तुम्हें भैरवी(शीर्षक) पृ० १११
८८- युगाधार, नव-निर्माण(शीर्षक) पृ० ८५
८६- प्रभाती, अखंड भारत,(शीर्षक) पृ० ७५
६०- पूजागीत, पृ० ६३
६१- चेतना, वज्रपात(शीर्षक)पृ०३६
६२- चित्रा, हिमाद्रि का आत्म परिचय(शीर्षक) पृ०१३
६३- विषपान, विष , सर्ग,पृ०३२
६४- कुणाल, प्रणय-निवेदन, सर्ग, पृ० ४७
६५- डा० सुरेन्द्रनाथ सिंह,`प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन`,पृ०३४८
६६- अर्थो वाच्यश्च, लक्ष्यश्च, व्यंग्यश्चेति त्रिधा:मता:।`-साहित्य दर्पणाकार
६७- `तत्र संकेतितार्थस्य बोधनाद ग्रिमाभिधा ।
संकेतो गृह्यते जातौ गुण द्रव्य क्रियासुच ।।`-सा०दर्पण,२।४ और काव्य दर्पण,पृ०२०
६८- लक्ष्मीनारायण [illegible], सुधांशु, जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत, पृ०८२-८३
६६- `काव्यशोभाया: कर्तारो धर्मागुणा:`-काव्यालंकार सूत्र ३।१।१
१००- `पूर्वे गुणा: नित्या:।यैर्विना काव्यशोभानुपपत्ते`।-वही,३।१।३
१०१- डा० सुरेन्द्रनाथसिंह `प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन,पृ०३६७
१०२- `भैरवी`, विप्लव गीत, (शीर्षक) पृ० १३१

१०३- भैरवी, विप्लव गीत(शीर्षक) पृ० १३०
१०४- युगाधार, 'कैसी देरी' (शीर्षक) पृ० ८८
१०५- 'गाढबन्धत्वमोज :।'-काव्यालंकार सूत्र, ३।१।५
१०६- 'पृथक्पदत्वं माधुर्यम् ।'- काव्यालंकार सूत्र, ३।१।२१
१०७- 'एकास्या एवोक्तेर्भङ्ग्यन्तरेण पुन: कथनात्मकमुक्तिवैचित्र्यं माधुर्यम् ।'-
रसगंगाधर, पृ० ७४
१०८- वही, 'बासंती'(शीर्षक) पृ० १६
१०९- 'वासन्ती, पृ० ३७
११०- 'शैथिल्यं प्रसाद:।'काव्यालंकार सूत्र, ३।१।६ तथा 'गुण: प्रसाद: ओजसा सह सम्प्लवात् ।'-काव्यालंकार सूत्र ३।१।७ पर वृत्ति ।
१११- 'अर्थवैमल्यं प्रसाद: ।'-काव्यालंकार सूत्र, ३।२।३
११२- 'वासन्ती, पृ० १८
११३- 'चित्रा', परिचय,(शीर्षक) पृ० ३२
११४- (अ)'विशिष्ट पद रचना रीति:।'काव्यालंकार सूत्र,१।२।७
(ब)'रीतिरात्मा काव्यस्य।'- । वही १।२।६
११५- 'विशेषो गुणात्मा।' वही, १।२।८
११६- 'ध्वन्यालोक', पृ० १७-२० और उस पर लोचन ।
११७- विस्तार के लिए देखिए, साहित्य दर्पण,८।४।७
११८- 'भैरवी', प्रयाणगीत, (शीर्षक) पृ० १२०
११९- 'पूजागीत', पृ० ५९
१२०- साहित्य दर्पण, ८।२-४
१२१- कुणाल, प्रणय-निवेदन, सर्ग, पृ० ४१
१२२- वासन्ती, पृ० ५३
१२३- दृष्टव्य, साहित्य दर्पण, ८।७-८
१२४- वासन्ती,पृ०१०१
१२५- वही, पृ० ५२
१२६- डा० देवराज उपाध्याय, हिन्दी साहित्य कोश, भाग-१ पृ० ८३७

१२७- डा० भगीरथ मिश्र,काव्य मनीषा, पृ० २०५,शीर्षक-हिंदी काव्य शास्त्र में परिव्याप्त काव्यालोचना के विविध मानदंड ।

१२८- वही, पृ० २०५, शीर्षक-वही ।

१२९- 'चित्रा,' लहरों के प्रति(शीर्षक) पृ० ३

१३०- 'भैरवी,' गांवों में,(शीर्षक) पृ० १६

१३१- 'वासन्ती', पृ० ८७

१३२- 'पूजागीत', पृ० ४०

१३३- 'वासवदत्ता', उर्वशी, प्रत्याख्यान, पृ० १०

१३४- 'चित्रा', लहरों के प्रति, (शीर्षक) पृ० ४

१३५- डा० भगीरथ मिश्र, काव्य मनीषा, पृ० २०७

१३६- 'वासवदत्ता', वासवदत्ता, प्रत्याख्यान, पृ० ६

१३७- वही, पृ० २०८

१३८- 'वासन्ती', पृ० ९

१३९- वही, पृ० २४

१४०- 'वासवदत्ता', सरदार चूडावत, प्रत्याख्यान, पृ० २५

१४१- 'भैरवी', जय जय जय,(शीर्षक) पृ० ११४-१५

१४२- वही, आजादी के फूलों पर(शीर्षक) पृ० ६५

१४३- 'मुक्तिगंधा', दिल्ली दरबार(शीर्षक) पृ० ५१

१४४- 'भैरवी', आज रुद्ध है मेरी वाणी,(शीर्षक) पृ० १०७

१४५- 'काव्य शोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।'-काव्यादर्श, २।१

१४६- १-'सौन्दर्यमलंकार:।'- काव्यालंकार सूत्र, १।१।२
२-'काव्य शोभाया: कर्तारो धर्मा गुणा:।'-काव्यालंकार सूत्र पर वृत्ति,३।१।१

१४७- 'उपकुर्वन्ति तं संतं युङ्गद्वारेण जातुचित्।'-काव्य प्रकाश, ८।६।७

१४८- 'शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा: शोभातिशायिन:।'-साहित्यदर्पण,१०।१

१४९- -द्विवेदी जी कविता के आनन्द और उपयोगिता जैसे प्रयोजनों को मानते हुए भाषा,छन्द,कल्पना एवं अलंकारों के प्रयोग में सरलता, स्वाभाविकता-एवं स्पष्टता में अधिक विश्वास करते हैं।-दृष्टव्य: 'रसज्ञरंजन',पृ०१८

१५०- 'अलंकार चाहे अप्रस्तुत वस्तु योजना के रूप में हो(जैसे उपमा, उत्प्रेक्षा आदि में) चाहे वाक्य वक्रता के रूप में(जैसे अप्रस्तुत प्रशंसा, परिसंख्या, व्याजस्तुति, विरोध इत्यादि में) चाहे वर्ण-विन्यास के रूप में (जैसे अनुप्रास में) लाये जाते हैं, वे प्रस्तुत भाव या भावना के उत्कर्ष के साधन के लिए ही ।' -'चिन्तामणि' भाग-१, पृ० २४७

१५१- डा० श्यामसुंदरदास कविता को यथार्थोन्मुख आदर्श प्रधान मानते हैं। अलंकार की स्वाभाविकता तथा सुस्पष्टता के साथ संगीत कला की आवश्यकता पर बल देते हुए कहते हैं- पद्य के भी ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनकी सरल निरलंकार स्वाभाविकता गद्यवत् भासित होती है, तथापि पद्य में संगीत कला की छाया अधिक स्पष्ट और प्रभावशालिनी देख पड़ती है ।'

साहित्यालोचन, छठी आवृत्ति, पृ० ८७

१५२- 'अनुभूति की तीव्रता, तन्मयता और आनंद की मात्रा के अनुसार ही कथन का सौष्ठव भी होता है । अलंकार, अभिव्यंजना, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि का समावेश भावानुभूति के अनुपात से ही रहता है ।' -'काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० २५

१५३- 'अलंकार केवल वाणी की सज सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं । भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं , वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति, नीति हैं, पृथक स्थितियों के पृथक स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं।--- वे वाणी के हास, अश्रु, स्वप्न,पुलक, हाव-भाव हैं । जहाँ भाषा की जाली केवल अलंकारों के चौखटे में फिट करने के लिए बुनी जाती है, वहाँ भावों की उदाहरण शब्दों की कृपण जड़ता में बंधकर सेनापति के दाता और सूम की तरह 'इकसार' हो जाती है ।' -

पल्लव प्र का प्रवेश, पृ० २२

१५४- 'चित्रा', पृ० ३६

१५५- 'चित्रा', वासन्ती(शीर्षक) पृ० १६

१५६- 'विषपान', प्रस्ताव , सर्ग, पृ० ७

१५७- 'चित्रा', लहरों के प्रति(शीर्षक) पृ० ३

१५८- 'कुणाल', प्रणय निवेदन, सर्ग, पृ० ४०

१५६- 'चित्रा', आगमन,(शीर्षक) पृ० २५
१६०- वही, गीत(शीर्षक) पृ० ३८
१६१- वही, गीत(शीर्षक) पृ० ३४
१६२- 'वासन्ती', पृ० १२
१६३- 'भैरवी', महर्षि मालवीय(शीर्षक) पृ० ३८-३६
१६४- चित्रा, निमंत्रण(शीर्षक) पृ० १
१६५- वासन्ती, पृ० ३
१६६- 'वर्णसाम्यमनुप्रासः ।'- काव्य प्रकाश, ६।७६
१६७- 'छेको व्यंजनसंघस्य सकृत्साम्यमनेकधा।'-साहित्य दर्पण, १०।३
१६८- चित्रा, लहरों के प्रति(शीर्षक) पृ० ५
१६६- वही, ग्राम कन्या(शीर्षक) पृ० ७
१७०- वही, हिमाद्रि का आत्मपरिचय(शीर्षक) पृ० १२
१७१- वही, निवेदन(शीर्षक) पृ० १७
१७२- वही, स्वागत (शीर्षक) पृ० १८
१७३- 'अनेकस्यैकधा साम्यमसकृद्वाप्यनेकधा ।
एकस्य सकृदाप्येष वृत्त्यनुप्रास उच्यते ।।'- साहित्य दर्पण,१०।४
१७४- 'रसविषय व्यापारवती वर्ण रचना वृत्तिःतदनुगतत्वेन प्रकर्षेणान्यसनाद्वृत्त्यनुप्रासः'
वही-१०।४ पर वृत्ति ।
१७५- 'भैरवी', खादी गीत(शीर्षक) पृ० ७
१७६- 'चित्रा', निमंत्रण(शीर्षक) पृ० १
१७७- 'भैरवी', त्रिपुरी कांग्रेस(शीर्षक) पृ० ६८-१०१
१७८- डा० भगीरथ मिश्र, काव्य मनीषा,अलंकार(शीर्षक) पृ० २१८
१७६- 'व्यजनं चेद्यथावस्थं सहाद्येन स्वरेण तु ।
आवर्त्यतेऽन्त्ययोज्यत्वादन्त्यानुप्रास एव तत् ।।-साहित्य दर्पण,१०।६ तथा उस पर
वृत्ति :- एष च प्रायेण पदस्य चान्ते प्रयोज्यः।

१८०- 'भैरवी', पूजागीत(शीर्षक) पृ० १
१८१- वही, जय राष्ट्रीय निशान(शीर्षक) पृ० १२६
१८२- 'युगाधार', बापू(शीर्षक) पृ० ५
१८३- 'भैरवी', विप्लव गीत(शीर्षक) पृ० १३१
१८४- डा० सुरेन्द्रनाथ सिंह, प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २५१
१८५- 'चित्रा', वासन्ती(शीर्षक) पृ० १६
१८६- वही, गीत,(शीर्षक) पृ० ४४
१८७- 'युगाधार', बेतवा का सत्याग्रह(शीर्षक) पृ० ७५
१८८- 'भैरवी', युगावतार गांधी(शीर्षक) पृ० ३
१८९- डा० सुरेन्द्रनाथ सिंह, प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन,पृ०२५२
१९०- 'चेतना', स्वतंत्रता के पुण्य पर्व पर(शीर्षक) पृ० २७
१९१- 'युगाधार', सेवाग्राम की आत्मकथा(शीर्षक) पृ० १५
१९२- 'कुणाल', प्रणाय निवेदन, सर्ग, पृ० ४२
१९३- प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन, डा० सुरेन्द्रनाथ सिंह, पृ० २७७
१९४- Audiovisual images
१९५- 'वासन्ती', पृ० ५
१९६- 'वासन्ती', पृ० ७६
१९७- 'चित्रा', निवेदन(शीर्षक) पृ० १७
१९८- वही, आगमन(शीर्षक) पृ० २४
१९९- 'वासन्ती',पृ० १०
२००- वही, पृ० १८
२०१- वही, पृ० २
२०२- 'वासन्ती', पृ० ८
२०३- वही, पृ० २५
२०४- 'चित्रा', निमंत्रण(शीर्षक) पृ० १
२०५- वही, वासन्ती(शीर्षक) पृ० १५
२०६- 'वासन्ती', पृ० ५२

२०७- 'वासन्ती', पृ० ६६
२०८- वही, पृ० ६४
२०९- वही, पृ० ३५
२१०- 'भैरवी', एक किसान, शीर्षक पृ० १९
२११- डा० सुरेन्द्रनाथ सिंह, प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २८०-८१ से उद्धृत।
२१२- डा० सुरेन्द्रनाथसिंह, प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० ३८१
२१३- 'वासन्ती', पृ० ६
२१४- वही, पृ० २४
२१५- डा० पुत्तूलाल शुक्ल, आधुनिक हिंदी काव्य में छंद योजना, परिशिष्ट पृ० ४८१
२१६- डा० भगीरथ मिश्र, उक्त ग्रंथ की प्रस्तावना से उद्धृत ।
२१७- वही, ग्रंथ वही
२१८- सुमित्रानंदन पंत, पल्लव का प्रवेश, पृ० ३०-३१
२१९- डा० पुत्तूलाल शुक्ल, आधुनिक हिंदी काव्य में छंद-योजना, तृतीय अध्याय, पृ० १९९
२२०- डा० पुत्तूलाल शुक्ल, आधुनिक हिंदी काव्य में छंद योजना, अन्त्यानुप्रास या तुक (शीर्षक) पृ० २१३
२२१- वही, शीर्षक वही, पृ० २१६
२२२- 'भैरवी', युगावतार गांधी (शीर्षक) पृ० २
२२३- वही, खादी गीत (शीर्षक) पृ० ६
२२४- वही, राणाप्रताप के प्रति (शीर्षक) पृ० ३४
२२५- 'युगाधार', कार्ल मार्क्स के प्रति (शीर्षक) पृ० १०७
२२६- 'युगाधार', 'ओ नौजवान (शीर्षक) पृ० ४७-४८
२२७- 'प्रभाती', प्रसाद जी की पुण्य स्मृति में (शीर्षक) पृ० ५७
२२८- 'चेतना', पन्द्रह अगस्त (शीर्षक) पृ० ५४
२२९- 'भैरवी', बढ़े चलो, बढ़े चलो । (शीर्षक प्रयाण गीत) पृ० १२५
२३०- वही, 'जय राष्ट्रीय निशान' (शीर्षक प्रयाण गीत) पृ० १२८
२३१- 'भैरवी', पूजागीत (शीर्षक) पृ० १
२३२- 'पूजागीत', पृ० ४०

२३३- वही, पृ० ५६

२३४- 'भैरवी', जय जय जय(शीर्षक) पृ० ११४

२३५- 'वासन्ती', पृ० ५८

२३६- 'चित्रा', मंदिर दीप(शीर्षक) पृ० ५४

२३७- 'वासन्ती', पृ० ४२

२३८- डा० पुत्तूलाल शुक्ल, आधुनिक हिंदी काव्य में छंद योजना', अतुकान्त प्रयोग (शीर्षक) पृ० २३२-३३

२३९- 'भैरवी', तरुण(शीर्षक) पृ० ८३

२४०- वही, हल्दीघाटी(शीर्षक) पृ० ३१

२४१- 'प्रभाती', प्रस्तावना,(शीर्षक) पृ० ५

२४२- वही, विक्रमादित्य(शीर्षक) पृ० ८०

२४३- डा० पुत्तूलाल शुक्ल, आधुनिक हिंदी काव्य में छन्द योजना, मुक्त छंद में-अन्त्यानुप्रास(शीर्षक) पृ० २२६

२४४- 'वासवदत्ता', वासवदत्ता, प्रत्याख्यान, पृ० ६

२४५- वही, पृ० २

२४६- वही, पृ० ४

२४७- वही, कर्ण और कुन्ती(शीर्षक) पृ० ३३